अंक : 01/ जनवरी सत्र : 2021-22 सम्पादक : डॉ. शान्तिकुमार पाटील

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर द्वारा प्रकाशित...

विद्यार्थियों की दर्पणिका

टोडरमल महाविद्यालय

E - पत्रिका

इस ज्ञानतीर्थ पर आए हैं हम मुक्ति कुसुम महकाने को।
अब छोड़ चले संसार कीच सिद्धों समान पद पाने को॥

अनुक्रमणिका

01	सम्पादकीय	सार्थक नाम महा-विद्यालय - डॉ. शान्तिकुमार पाटील (प्राचार्य)	03
02	सह-सम्पादकीय	मुनिराज पद्मासन में क्यों बैठते हैं? - प. अमन शास्त्री, लोनी(अधीक्षक)	04
03	शोध कक्ष	अनुमोदना - स्वानुभव जैन, खनियाँधाना	05
		आखिर! क्यों त्यागें रात्रिभोजन ? - शशांक जैन, सागर	07
04	काव्य कक्ष	त्रिलोक चतुर्दशी - संयम पुजारी, खनियाँधाना	08
		हम देखी प्रभा मुनिराज की... - समकित जैन, ईसागढ़	08
		हम जैनी हैं ये कम है क्या ? - अभिषेक जैन, देवराहा	09
		रात्रिभोजन त्याग प्रेरणा - आर्जव जैन, खड़ैरी	09
05	इतिहास कक्ष	बलिदान की अप्रतिममूर्ति : भामाशाह - सुष्मित जैन, सेमारी	10
		क्या चाणक्य भी जैन मुनि ? - आयुष जैन, उदयपुर	11
06	गोष्ठी कक्ष	सप्तभंग में एवकार एवं अपिकार - सहज जैन, छिंदवाड़ा	12
		अध्यात्म का मूल : न्याय - आर्जव माद्रप, जालना	13
		गुणस्थान को जानने से लाभ - अविरल जैन, खनियाँधाना	14
07	अनसुनी कथा कक्ष	राजा श्रेणिक : मूर्ख या बुद्धिमान ? - स्वस्ति सेठी, जयपुर	15
08	काव्यार्थ कक्ष	आत्मा और ज्ञान का एकीकरण - चेतन जैन, गुलाबचन्द्रजी	16
		स्व-पर भेदविज्ञान से स्वभाव-ग्रहण - अरविन्द जैन, खड़ैरी	16
09	विद्वानों का संघर्ष	गरीबी भी जिन्हें दरिद्र न बना पाई - शाश्वत जैन, भोपाल	17
		शुरुआत एक रुपया से... - दिव्यांश जैन, अलवर	17
10	Jainopathy कक्ष	धर्म साधना हेतु आहार चर्या - सन्देश जैन, दिल्ली	18
11	नाटक कक्ष	क्या खोया क्या पाइया ? - अर्पित जैन, खनियाँधाना	19
12	मूल-आगम कक्ष	मुनिराज निद्रा को कैसे जीतते हैं ? - पारस जैन, भिण्ड	21
13	अध्यापक कक्ष	सा विद्या या विमुक्तये - पं. जिनकुमार शास्त्री (उपप्राचार्य)	22
		निर्णय लेने की शक्ति - पं. गौरव शास्त्री (वरिष्ठ अधीक्षक)	22
14	चित्रकला कक्ष	समय-एव आत्मा - हर्षिल सिंघई, जबलपुर	23
		अलंकार आर्ट - सर्वज्ञ जैन, गुलाबचन्द्रजी	23
15	विद्वान कक्ष	मंगलं कुन्दकुन्दार्यो - डॉ. अरुणकुमार जैन, बण्ड	24
16	उपलब्धि द्वार	08	
17	सूचना पट्ट	09	

- मंगल-आशीष : डॉ. हुकमचंद भारिल्ल
- संपादक : डॉ. शान्तिकुमार पाटील, जयपुर
- सह - सम्पादक : पं. अमन जैन शास्त्री, लोनी
- निर्देशक : श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल
  श्री शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल
- मार्गदर्शक : पं. जिनकुमार शास्त्री, जयपुर

वार्षिक सह-सम्पादक : स्वानुभव जैन, खनियाँधाना (शास्त्री तृतीय वर्ष)

छात्र सम्पादकीय मण्डल :
- संयम पुजारी, खनियाँधाना
- सुष्मित जैन, सेमारी
- समकित जैन, ईसागढ़
- शाश्वत जैन, भोपाल
- संदेश जैन, दिल्ली
- अरविन्द जैन, खड़ैरी

तकनीकी सहयोग :
- पारस जैन, भिण्ड
- अविरल जैन, खनियाँधाना
- आयुष जैन, उदयपुर

डिज़ाइनर :
- पं. विनीत जैन शास्त्री, हटा
- समर्थ जैन, हरदा

सम्पादकीय

सार्थक नाम महा-विद्यालय

- डॉ. शान्तिकुमार पाटील
(प्राचार्य)
श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर

किसी भी क्षेत्र के उच्च स्तरीय (स्नातक एवं स्नातकोत्तर) अध्ययन के स्थान को महाविद्यालय कहा जाता है। हमारा महाविद्यालय भी जैन दर्शन के क्षेत्र में स्नातक एवं स्नातकोत्तर का अध्ययन केंद्र होने से तो महाविद्यालय है ही; परंतु एक और विवक्षा से भी यह महा-विद्यालय है:-

एक अध्यात्म विद्या को छोड़कर जगत की समस्त विद्याएँ एकमात्र देह संबंधित समस्याओं के समाधान में सहायक होती हैं और एक भव तक ही सीमित होती हैं। यदि सुखदायक भी हैं, तो पराधीन व क्षणिक सुख ही देने वाली हैं।

एक अध्यात्म विद्या ही ऐसी विद्या है, जो आत्मा का कल्याण करने वाली है, भव-भावांतर में साथ देने वाली है और भव का अभाव करके स्वाधीन व चिरस्थाई सुख प्रदान करने वाली है; अतः यही विद्या महान विद्या है।

इस अध्यात्म विद्या के समक्ष तो बाकी सभी विद्याओं को अविद्या कहा गया है:-

देहोऽहमिति या विद्या अविद्या सा परिकीर्तिता।
नाहं देहश्चिदात्मेति बुद्धिर्विद्येति भण्यते ।।

ऐसी महान अध्यात्म की विद्या के अध्ययन का केंद्र होने से हमारा विद्यालय इस अर्थ में भी महा-विद्यालय है।

जीव की बहत्तर कलाओं में भी दो ही कलाएँ श्रेष्ठ मानी गई हैं:-

कला बहत्तर जीव की, तामें में दो सरदार।
एक जीव की जीविका, दूजा जीवोद्धार।।

हमारे महाविद्यालय में लौकिक आजीविका की दृष्टि से संस्कृत विश्वविद्यालय की शास्त्री की स्नातक उपाधि का अध्ययन कराया जाता है, इसके माध्यम से भी जगत के सर्वश्रेष्ठ कार्य - ऐसे अध्यापन के क्षेत्र में जाने का सुअवसर प्राप्त होता है। जीवोद्धार की दृष्टि से जिनवाणी के अध्ययन के माध्यम से आत्मानुभूति की कला सीखने का सौभाग्य मिलता है।

इसप्रकार यह महा-विद्यालय के नाम को सार्थक करता है।

वर्तमान डिज़िटल क्रांति के युग में हमारे महाविद्यालय की यह E-पत्रिका हमारे विद्यार्थियों की लेखन प्रतिभा को प्रोत्साहन देने का एक सशक्त माध्यम है। इसकी सभी रचनाएँ मैंने ध्यान पूर्वक पढ़ी हैं। सभी अपनी योग्यतानुसार अच्छी हैं। उन सभी रचनाकारों के रचनात्मक कुशलता के उज्जवल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएँ!!!

सह - सम्पादकीय

मुनिराज पद्मासन में क्यों बैठते हैं?

पं. अमन जैन शास्त्री
(अधीक्षक)
श्री तोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय
जयपुर

मुनिराजों का प्रमुख कार्य ध्यान और अध्ययन करना है। ध्यान की स्थिरता हेतु अनेक प्रकार की मुद्राओं द्वारा कायोत्सर्ग करते हैं।

यह कायोत्सर्ग शरीर को कमज़ोर नहीं, अपितु मजबूत बनाता है; क्योंकि कायोत्सर्ग में वे सभी मुद्राएँ हैं, जिन्हें हम शारीरिक स्वास्थ्य हेतु योग में करते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है की योग की शुरुआत पतंजलि ने नहीं की; अपितु वह तो अनादि कल से हमारे नग्न दिगम्बर मुनिराजों द्वारा ही प्रवर्तित है।

कायोत्सर्ग की उन्हीं मुद्राओं में से एक पद्मासन मुद्रा है, जिसे मुनिराज ध्यान की स्थिरता के लिए धारण करते हैं।

इस पद्मासन अवस्था में दोनों तलवे एक-दूसरे पैर की जंघाओं के ऊपर होते हैं और नितंब के साथ दोनों घुटने भी जमीन को स्पर्श करते हैं तथा पीठ सीधी रहती है।

पद्मासन में बैठने से शरीर स्थिर रहता है, जिसके कारण मुनिराज अपना उपयोग शरीर से हटाकर स्व में स्थिर करते हैं तथा ध्यान तप में एकाग्र होते हैं।

प्रश्नः- पद्मासन में बैठने पर पीठ सीधी तथा स्थिर मुद्रा क्यों बनी रहती है?

उत्तरः- हमारे शरीर के निचले भाग में नितंब और घुटने - दोनों ही भारी अंग होते हैं। सुखासन में बैठने पर नितंब तो जमीन के आधार से टिक जाते हैं; परंतु घुटने जमीन पर न टिकने के कारण शरीर का संतुलन डग-मगाता रहता है। उसे स्थिर रखने के लिए और आराम पाने के लिए व्यक्ति आगे झुककर बैठता है और बारम्बार पैर ऊपर-नीचे बदलते रहता है; तब भी सुखासन में स्थिर मुद्रा नहीं हो पाती है; क्योंकि वहाँ आधार(नितंब और घुटने) ही व्यवस्थित नहीं हैं। परंतु पद्मासन में दोनों भारी अंग(नितंब और घुटने) जमीन पर स्थित होते हैं, जिसके कारण शरीर का संतुलन डग-मगाता नहीं है, स्थिर बना रहता है।

जब शरीर का निचला भाग स्थिर हो ग्सर्ग मुद्रा अनेक रहस्यों को अपने में समेटे हुए हैं। या, तब उसके उपरिम भाग में स्थित रीड की हड्डी को 90° डिग्री का कोण(angle) मिल जाता है, जिसके कारण पीठ सहज ही सीधी बनी रहती है। इसप्रकार पूरा शरीर परस्पर ही बंधकर एक स्थिर मुद्रा को प्राप्त होता है।

आयुर्वेद शास्त्र और योग शास्त्र के अनुसार नाभि और छाती के मध्य लगभग 8 से 10 अंगुलियों का अंतर होना चाहिए। जिसके कारण हम अनेक बीमारियों से बचे रहते हैं और जब हम आगे झुककर बैठते हैं, तब हमारी नाभि और छाती के बीच का स्थान 8 से 10 अंगुलियाँ न रहकर कम हो जाता है, जिसके कारण शरीर अनेक बीमारियों से घिर जाता है; परंतु जब हम पद्मासन में बैठते हैं, तब पीठ सीधी होने से सहज में ही नाभि और छाती के मध्य 8 से 10 अंगुलियों का अंतर हो जाता है; जिससे शरीर स्वस्थ बना रहता है।

भगवान की प्रतिमा को गौर से देखने पर अनेक रहस्य प्रकट होते हैं। **पद्मासन प्रतिमा में दायाँ पैर ऊपर और बायाँ पैर नीचे रहता है तथा** खड्गासन प्रतिमा के **पैरों के पंजे सीधे होते है।** शायद ही इस ओर हमारा ध्यान गया होगा कि प्रतिमा के पैरों के पंजे सीधे क्यों होते हैं?

सीधे पंजों का अर्थ है कि मुनिराज शारीरिक रूप से भी पूर्ण स्वस्थ हैं। टेड़े पंजों का अर्थ है कि वहाँ की नसों में रक्त का स्राव सही तरीके से नहीं हो रहा है, उसी के कारण शरीर में अनेक रोग पनपते हैं।

प्रश्नः- यदि टेड़े पंजे हैं तो उन्हें सीधा कैसे किया जाए?

उत्तरः- इसके लिए अलग से कोई भी प्रयत्न करने की आवश्यता नहीं है, यदि किसी अन्य उपचार की आवश्यकता होती तो मुनिराज कैसे करते? क्योंकि मुनिराज के पास तो किसी भी प्रकार का परिग्रह है ही नहीं। इसका उपचार मुनिराज की पद्मासन अवस्था से ही होता है।

पद्मासन में बैठने से पैरों के तलवों की नसों में तनाव व जोर आता है, जिससे उनमें खिचाव उत्पन्न होता है और रक्त प्रवाह सही तरीके से होने लगता है। रक्त-प्रवाह समीचीन होने से पंजों की स्थिति भी समीचीन रहती है।

इसप्रकार मुनिराज लौकिक शारीरिक रोगों से बचने वाले व पारलौकिक ध्यान की दृढ़ता में सहायक - ऐसे पद्मासन मुद्रा को धारण करते हैं; लेकिन मुनिराज शारीरिक रोगों से बचने के लिए इस पद्मासन अवस्था में नहीं बैठते हैं; अपितु वे तो पारलौकिक ध्यान की स्थिरता के लिए करते हैं, जिससे लौकिक शारीरिक स्वास्थ भी सहज ही बना रहता है।

ऐसी अनेक रहस्यों से भरी पद्मासन अवस्था को मुनिराज सहज ही कायोत्सर्ग रूप में करते हैं। इसीप्रकार उनकी प्रत्येक कायोत्सर्ग मुद्रा अनेक रहस्यों को अपने में समेटे हुए हैं।

शोध कक्ष

अनुमोदना

स्वानुभव जैन, स्वानियाँधाना (शास्त्री तृतीय वर्ष)

अनादिकाल से यह जीव संसार में परिभ्रमण करता हुआ मोहरूपी पिशाच से बैल की भाँती जुत रहा है, उसमें एक मात्र कारण इसके स्वयं के ही पाप कार्य है; जो यह कृत-कारित और अनुमोदना के माध्यम से करता है। कृत और कारित के स्वरूप से तो सभी भलीभांति परिचित हैं; परंतु अनुमोदना के स्वरूप से अनभिज्ञ हैं; अतः अनुमोदना के स्वरूप को आगम के आलोक में देखते हैं:-

अनुमोदना शब्द अनु उपसर्ग पूर्वक मुद्(प्रसन्नता) धातु से ल्युट् प्रत्यय करके बना है; जिसका अर्थ होता है दूसरे के द्वारा किये जाने पर प्रसन्न होना।

स्वयं न करते हुए भी अपने लिए किये जा रहे पाप कार्यों का निषेध न करना भी अनुमोदना है; क्योंकि करने वाले के मानस परिणामों की आपके चित्त में स्वीकृति है; इसलिए आपने निषेध नहीं किया; अतः अनुमोदना का पूरा फल लगेगा।

राजवार्तिक में कहा है कि **'कोई व्यक्ति किये जाने वाले कार्य का यदि निषेध नहीं करता तो उन परिणामों का समर्थक होने से वह उसका अनुमोदक माना जाता है।'**[2]

स्वयं के लिए न किया गया हो; परन्तु यदि हमारे अधिकृत क्षेत्र में किया गया हो और उसका निषेध न किया जाए तो भी अनुमोदना का पाप लगता है। अधिकृत क्षेत्र से तात्पर्य है कि यदि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विचार किये जाने पर निषेध करने में कोई बाधा न पहुँचे तो वह हमारा अधिकृत क्षेत्र है और अधिकृत क्षेत्र में हो रहे पाप कार्य का निषेध न करना अनुमोदना है।

अनधिकृत क्षेत्र में हो रहे पाप कार्य का भी निषेध तो करना ही चाहिए; परन्तु वहाँ निषेध बाह्य क्रिया रूप न होकर मात्र अन्तरंग परिणामरूप होना चाहिए अर्थात् करने वाले के मानस परिणामों की स्वीकृति नहीं होना चाहिए और हो रहे पाप कार्य का अन्तरंग में खेद होना चाहिए; अन्यथा अनधिकृत क्षेत्र में किये जाने वाले पाप कार्य का भी दोष लगता है।

अनुमोदना के लिए जिनागम में अनुमति शब्द भी मिलता है। अनुमति-त्याग प्रतिमा में भी अनुमोदना का त्याग किया जाता है।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में भी कहा गया है कि 'जिसकी आरम्भ, परिग्रह में या इस लोक संबंधी कार्यों में अनुमति(अनुमोदना) नहीं है, वह रागादि रहित समबुद्धि वाला है। वह ही अनुमति-त्याग प्रतिमा का धारी मानने योग्य है।'

मुनिराज भी उद्दिष्ट आहार का त्याग आरंभ परिग्रह के अनुमोदकपने का त्याग करने के लिए ही करते हैं। यहाँ मूलाचार का कथन भी द्रष्टव्य है कि **'उद्दिष्ट आहार करने वाले साधु के प्रतिसेवना अनुमति नामका दोष आता है।'**[4]

'पर के द्वारा दिया गया कृत-कारित - अनुमोदना रहित प्रासुक और भोजन करने रूप जो सम्यक् आहार का ग्रहण करना, वह एषणा समिति है।'[5]

इसप्रकार चरणानुयोग में श्रावक एवं मुनिराजों के लिए पाप कार्यों की अनुमोदना का निषेध किया गया है।

अनुमोदना के फल के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण तथ्य:-

1. हम जिन कार्यों की अनुमोदना कर रहे हैं, उनके फल स्वरूप वे कार्य हमारे साथ भी घटित होते है; अतः जिन कार्यों के फल को हम भोगना चाहते हैं या भोग सकते हैं, हमें उन्हीं कार्यों की अनुमोदना करना चाहिए।

2. 'गुणवान् की अनुमोदना करने पर अनुमोदना करने वालों को भी गुण का लाभ होता है तथा अवगुणी की प्रशंसा करने वालों को अवगुण का लाभ होता है; अतः गुणवान् की ही प्रशंसा करना चाहिए।'

प्रथमानुयोग* में अनेक ऐसे साक्ष्य हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि अवगुणियों की प्रशंसा(अनुमोदना) का फल बहुत बुरा होता है और पुण्यात्मा जीवों के कार्यों की अनुमोदना मात्र उच्च गति का कारण बन जाती है।

1.अमरकोष
2.राजवार्तिक, अध्याय-6, सूत्र-8, वार्तिक-9, पृ.514
3.रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक-146
4.मूलाचार, गाथा-414
5.नियमसार, गाथा-6
6.ज्ञानानंद श्रावकाचार, पृ.-141

*आदिपुराण- नेवला, सूकर, सिंह, बन्दर ने आहारदान की अनुमोदना की थी। जिसके फल स्वरूप उन्होंने उत्तम भोगभूमि का बंध किया था।
पांडव पुराण- द्रौपदी ने दुर्गंधा आर्यिका के भव में वसन्तसेना वेश्या के रमण क्रिया की अनुमोदना की थी जिसके फल स्वरूप उन पर पंचभरतारी का आरोप लगा।

3. यदि हम किसी गलत व्यक्ति की प्रशंसा, सेवा, स्तुति करते है तो उसके द्वारा किये गए पाप कार्यों की अनुमोदना का फल हमें लगता है। यही कारण है कि जिनागम में कुगुरु की प्रशंसा, सेवा, स्तुति करने का निषेध किया गया है; कहा भी गया है:-

'जो जानते हुए भी लज्जा, गारव और भय से कुगुरु के पैरों में पड़ते हैं, उनको बोधि अर्थात् सम्यक्त्व नहीं है। वे जीव पाप की अनुमोदना करते हैं। पापियों का सम्मान आदि करने से भी पाप की अनुमोदना का फल लगता है।'

4. कृत, कारित और अनुमोदना का समान फल है। - यह कथन सुनते ही हमारे मन में उथल-पुथल होने लगती है; क्योंकि हमें अनुमोदना में पर द्रव्य हमारे द्वारा परिणमित होता हुआ अर्थात् कोई कार्य होता हुआ नज़र नहीं आता; इसलिए हमें यह बात स्वीकृत नहीं होती कि तीनों का फल समान है; परन्तु हम यह नहीं विचारते हैं कि कृत और कारित में भी यह जीव द्रव्य पर का कर्ता तो है ही नहीं। वहाँ भी इसे फल तो इसके आत्म-परिणामों के अनुसार ही मिलता है और अनुमोदना में भी फल आत्म-परिणामों के अनुसार ही मिलता है; अतः आत्म-परिणामों की मुख्यता से यह कहा जाता है कि कृत, कारित और अनुमोदना का समान फल है।

तथा जब स्वयं न कर सके, तब दूसरों से कराता है; दूसरों से भी न करा सके, तब दूसरों के द्वारा किये जाने पर प्रसन्न होकर अनुमोदना करता है। जैसे स्वयं दान न कर सके तो दूसरों से दान कराता है, दूसरों से भी दान न करा सके तब दान दे रहे जीव की विशुद्ध परिणामों द्वारा प्रशंसा करता है।

यहाँ विचारणीय बात यह है कि कृत, कारित और अनुमोदना तीनों में परिणाम तो दान करने के ही रहे; अतः परिणामों की अपेक्षा तीनों का समान फल कहा है।

कोई कुतर्क करे कि आप कृत, कारित और अनुमोदना का समान फल मत कहिए; क्योंकि जीव स्वच्छंदी हो जायेंगे, वे कहेंगे कि हमें व्यवसाय के लिए जाना हैं; अतः हम मंदिर नहीं जा रहे; परन्तु जो मंदिर जा रहे है, उनके उस कार्य की हम अनुमोदना कर रहे है; अतः फल तो हमें मिल ही गया। अब मंदिर जाने से क्या प्रयोजन?

समाधान - अज्ञानी तो ऐसा कहेंगे ही क्योंकि उनका प्रयोजन तो जिनवाणी के कथनों से स्वच्छंदता का पोषण करना ही है; परन्तु उनके स्वच्छंदी हो जाने के भय से यथार्थ उपदेश न दिया जाए - यह उचित नहीं। जैसा कि टोडरमलजी ने भी कहा है कि यदि गधा मिश्री खाकर मर जाए तो ज्ञानी पुरुष तो मिश्री खाना नहीं छोड़ते।

प्रश्न - लोक में भी तो यही देखने में आता है कि अनुमोदना से ज्यादा फल कृत का मिलता है, जैसे - किसी ने गोली मारी और दूसरे नेमात्र अनुमोदना की तो जेल गोली मारने वाले को होती है। अनुमोदना वाले को नहीं; अतः तीनों का फल समान है - यह कहना व्यर्थ ही है?

उत्तर – यह बहुत स्थूल कथन है कि गोली मारने से जेल गया। प्रथमानुयोग में उपदेश की शैली में कहा जाता है कि तुमने यह पाप किया उसका यह फल मिल गया।

वास्तव में करणानुयोग की अपेक्षा विचार किया जाए तो पाप कार्यों से बांधे गए कर्म का उदय उसके आबाधाकाल के पूरे होने पर ही आता है। '। कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति वाले कर्म में 100 वर्ष का अबाधाकाल होता हैं' जैसे मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ाकोडी सागर है, तो 70 कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष की स्थिति वाले कर्म का 7000 वर्ष बाद उदय प्रारंभ होता है' वैसे ही यहाँ गोली मारते समय जिस कर्म का बंध किया, उसका फल तो उसके आबाधाकाल के पूरे होने पर मिलेगा। अभी गोली मारने के फल में जेल नहीं गया; अपितु किसी और पूर्व कर्म के उदय से जेल गया है।

प्रश्न - कर्ता और अनुमोदक को फल आबाधाकाल पूरा होने पर मिलेगा - यह तो समझे; परन्तु जब फल मिलेगा तब तो अनुमोदक से ज्यादा कर्ता को ही मिलेगा?

समाधान - कर्ता को ही अधिक फल मिलेगा यह मानना भ्रमवश होता है तथा कृत, कारित और अनुमोदना का समान फल है - यह भी सामान्य कथन ही है; क्योंकि हिंसा में प्रमाद परिणति मूल है अर्थात् कर्ता और अनुमोदक में अधिक प्रमाद (कषाय परिणाम) जिसके है, उसे अधिक बुरा फल मिलेगा। उपर्युक्त उदाहरण में देखें तो गोली मारने वाले से अधिक कषाय परिणाम यदि अनुमोदक के हैं तो फल उसको अधिक मिलेगा। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा भी है कि ' हिंसा अनुभावेन फलति' अर्थात् कषाय-भाव के अनुसार फल मिलता है। यथा - 'एकः करोति हिंसा भवन्ति फल भागिनो बहवः अर्थात् हिंसा तो एक पुरुष करता है और फल को भोगने वाले अनेक होते हैं। जैसे- चोर को फांसी की शिक्षा में मारता तो एक चांडाल है; परन्तु सर्व दर्शक अनुमोदना पूर्वक रौद्र परिणाम करके पाप के भोक्ता होते हैं।'

इसप्रकार इन तथ्यों के माध्यम से अनुमोदना एवं अनुमोदन के फल का सम्यक् निर्णय करके ज्ञान की निर्मलता के द्वारा वीतरागता का ही उद्यम करना योग्य है।

7.दर्शनपाहुड, गाथा-13

8.करणानुयोग परिचय, पत्र-3, पृ.27

9.पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा-55

आखिर! क्यों त्यागें रात्रि-भोजन?

- शशांक जैन, सागर(शास्त्री प्रथम वर्ष)

वर्तमान समय की इस दौड़-धूप भरी जिंदगी में सभी लोग एक अच्छी जीवन-शैली से रहना पसंद करते हैं। वैसे ही एक श्रावक भी अपनी जैन जीवन-शैली से रहना पसंद करता है, तो क्या है वह जैन जीवन-शैली? सदाचार पूर्ण संयमित जीवन, नित्य देवदर्शन, छने हुए जल का उपयोग एवं रात्रि-भोजन त्याग - यही अहिंसक जैन श्रावक की जीवन-शैली होती है।[1]

अन्न क्या है? रात्रि-भोजन क्यों नहीं करना चाहिए? इत्यादि विषयों को तर्क-युक्ति एवं आगम के आधार से समझते हैं।

अन्न:- अन्न का यदि सामान्य अर्थ देखें तो जो खाद्य पदार्थ एवं जो खाने योग्य सामग्री है, उसे अन्न कहा जाता है। जिन पदार्थों को कच्चा नहीं खाया जा सकता और जिसमें आरंभादि क्रियाएँ की जाती हैं, उसे अन्न कहते हैं। जैसे- गेहूँ, दाल, चावलादि। इसके अनुसार यदि फलादि में भी आरंभादि क्रियाएँ की जाएँ, तो उसे भी उपचार से अन्न कहा जाएगा। जैसे- केले की चिप्स आदि; परन्तु यहाँ जो खाया जाए उसे अन्न कहा है और अन्न को ही भोजन कहते हैं तथा भोजन को रात्रि में नहीं खाया जाता है।

जैन शास्त्रों में रात्रि-भोजन त्याग पर क्यों जोर दिया गया है?- अहिंसाव्रत की रक्षा, आठ मूलगुणों की निर्मलता तथा इसलोक संबंधी निरोगता एवं परलोक के दुःखों से बचने के लिए रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिए।[2]

आयुर्वेद की अपेक्षा रात्रि-भोजन त्याग:- आयुर्वेद में भोजन पाचन का संबंध जठराग्नि से बताया है, यह जठराग्नि सूर्य की किरणों से प्रदीप्त होती है। रात्रि में सूर्य के अभाव के कारण जठराग्नि प्रदीप्त नहीं हो पाती है, जिसके कारण रात्रि में खाया गया भोजन पचता नहीं है।

आयुर्वेद में उपवास भी करवाते हैं, जिसकी पारणा दिन में ही करवाई जाती है एवं वैद्य औषधी[3] भी दिन में लेने की प्रेरणा देते हैं; तो रात्रि में भोजन करने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता; अतः रात्रि में भोजन करना ही नहीं चाहिए।[4]

अहिंसा की दृष्टि से रात्रिभोजन त्याग:- रात्रि में भोजन करने से हिंसा अनिवार्य रूप से होती है। रात्रि में भोजन त्यागे बिना वह किसी भी हालत में उस हिंसा से बच नहीं सकता; इसीलिए अहिंसा प्रेमियों को या हिंसा से विरक्त पुरुषों को रात्रि में भोजन का त्याग करना चाहिए।[5]

वैज्ञानिक - दृष्टिकोण से रात्रि-भोजन त्याग क्यों? - 'रात्रि में बहुत अधिक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती है। जिस तरह सूर्य की पहली किरण से ही सूरजमुखी एवं कमल के फूल खिल जाते हैं तथा रात्रि होने पर पुनः संकुचित हो जाते हैं, उसी तरह हमारे शरीर की क्रिया[6] होती है। सूर्य की किरणों में अल्ट्रावॉयलेट (Ultraviolet)[7] एवं इन्फ्रारेड (Infrared)[8] नामक किरणें रहती हैं, जिसके कारण सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती; इसीलिए वर्तमान विज्ञान भी रात्रि में भोजन त्याग की प्रेरणा देता है और कहता है कि सूर्य के कारण दिन में भोजन का पाचन सही तरीके से होता है; इसीलिए भोजन दिन में करना चाहिए।

रात्रि में भोजन करने से हानियाँ:- रात्रि में भोजन करने से पाचन तंत्र सही तरीके से काम नहीं करता है, जिससे असंतुलित पाचन, कब्ज, मोटापा, नींद नहीं आना, हृदय रोग, मानसिक अशांति तथा पाप कार्यों में प्रवृत्ति होती है एवं उसके यत्नाचार[9] तो रहता ही नहीं है; अतः जैन आगम में कहा भी है कि एक पाप करने में समस्त पाप आ जाते हैं; इसीलिए रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिए।[10]

जब रात्रि में पानी पीने को खून के समान बताया है और भोजन करने को मांस खाने के समान बताया है;[11] इसलिए हमें रात्रि भोजन को त्यागने का हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए।

रात्रि-भोजन त्याग का फल:- रात्रि-भोजन से होने वाली सभी हानियों से बच जाता है, यही सबसे बड़ा लाभ है। रात्रि-भोजन त्याग की महिमा प्रदर्शित करते हुए कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में कहा भी है कि जो पुरुष रात्रि-भोजन का त्याग करता है, उसे एक वर्ष में छह मास के उपवास का फल लगता है;[12] क्योंकि वह रात्रि में आरंभ का त्याग करता है और आरंभ से हिंसा होती है तथा हिंसा ही सभी पापों का मूल है; अतः हिंसा से बचने के लिए रात्रि भोजन का त्याग करना चाहिए।

---

1. वीर प्रभु कह गए सुनो, जैनी वह कहलाएगा।
   दिन में भोजन छान के पानी, नित्य जिनालय जाएगा।
2. वसुनन्दी उपासकाध्ययन, श्लोक-334
3. अष्टांग हृदय, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, पृ.14
4. अष्टांग हृदय, डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, पृ.196
5. पुरुषार्थसिद्धि-उपाय, टीका, श्लोक-129
6. दिन में तीव्र रहती है और रात्रि में नहीं होती है।
7. वैज्ञानिक रिटर - पराबैंगनी किरणों को अल्ट्रावॉयलेट किरण कहते हैं; जिसके कारण सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती।
8. वैज्ञानिक सर विलियम हर्शेल- अवरक्त किरणों को इन्फ्रारेड किरण कहते हैं; जिसके कारण सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति रुकती है।
9. प्रमाद रहित होकर, आचरण का बुद्धि पूर्वक प्रयत्न करना, वह यत्नाचार है।
10. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अधिकार-4, श्लोक-85,86, पृ.144
11. मार्कण्डेय पुराण- अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिर मुच्यते।
    अन्नं मांस सम प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा॥
12. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-82

काव्य कक्ष

त्रिलोक चतुर्दशी

- संयम पुजारी, शानियाँधाना (शास्त्री तृतीय वर्ष)

(दोहा)

जानूँ त्रिलोक उर धार मैं , वीतराग विज्ञान।
भेद-ज्ञान कर मैं वरूँ, मुक्ति रानी महान।।1।।

(वीर)

तीन लोक चौदह राजू है , ऊर्ध्व अधो में अर्ध रहे,
ऊर्ध्व अधो में सात-सात, वह मध्यलोक तिरछा ही रहे।
चित्रा से कलकल पृथ्वी तक अधोलोक में वास रहा,
सात भूमि उनचास पटल में मैंने दुःख अपार सहा।।2।।

आयत गोल त्रिकोण रूप चौरासी लाख बिलन माहीं,
सहस सर्प बिच्छू से भी अनंत वेदन मैंने पाई।
सर्व अन्न जल मिलने पर भी भूख-प्यास ना मिट पाए,
वैतरणी का पिएं सलिल पर खून-पीप सा ना भाए।।3।।

लख योजन का लोह गले तहँ ऐसी शीत ऊष्ण होवे,
दस हजार से तैंतिस सागर आयु तक ये दुःख सहे।
जान आत्म को वहाँ सदा यह दुःख सहा पर सुखी रहा,
ना जाना निज आत्म तत्त्व को दुःख सहा अर दुखी रहा।।4।।

कुछ कम तेरह राजू घन यह त्रसनाली का नाप कहा,
त्रस जीवों का वास यहाँ पर थावर अन्य क्षेत्र कहा।
मध्य आठ परदेशों से लख चालिस योजन ऊपर तक,
ढाई द्वीप मानुष, पर तिर्यक् देव बसे स्वयंभू तक।।5।।

पहला थाल समान अन्य चूड़ी समान जानो भाई,
जम्बू मध्य सुमेरु खड़ा अर दक्षिण में हम सब भाई।
भरत हैमवत हरी नाम के क्षेत्र दिशा दक्षिण जानी,
रम्यक हैरण्वत ऐरावत उत्तर में जाने ज्ञानी।।6।।

इन सब मध्य विदेहक्षेत्र है तामें सीमंधर स्वामी,
जिनको सुन श्री कुन्दकुन्द की आतम निधि थी हरषानी।
मानुष तिर्यक जन्म हुआ वह जन्म समय का दुख भारी,
मानुष की तीनों पर्याय तिर्यक की माया थी भारी।।7।।

अन्तर्मुहूर्त से तीन पल्य तक आयु में है वास किया,
दुख आकुलता तृष्णा कारण सुख का लेश न स्वाद लिया।
सूक्ष्म तत्त्व का ज्ञान किया पर आतम निधि ना पहिचानी,
इसीलिए मैंने अब आतम निधि पाने की उर ठानी।।8।।

ऊपर सात राजू तक सोलह स्वर्ग ग्रैवेयक इक कम दस,
अनुदिश भी नव पंच अनुत्तर ऊपर सिद्धालय का बस।
ज्योतिष व्यंतर भवनवास का तिर्यक अधोलोक में वास,
वैमानिक के ऊर्ध्वलोक में हैं विमान तहँ करते वास।।9।।

कल्पोत्पन्न अतीत भेद से स्वर्गलोक दो भाग बटा,
नीचे चौबिस इंद्र ऊर्ध्व में अहमिन्द्रों का वास बटा।
स्थिति प्रभाव द्युति सुख लेश्या में विशुद्धि बढ़ती जावे,
काय परिग्रह प्रवीचार अभिमान हीन होता जावे।।10।।

दस हजार से तैंतिस सागर तक की आयु वहाँ कही,
ऊपर तो चर्चा में बीते नीचे भोग विलास कही।
कई प्रकार की ऋद्धि होवें पर ईर्ष्या में मन खोवें,
माला मुरझत देख रोए बस इसीतरह आयु खोवें।।11।।

सबसे ऊपर वातवलय में सिद्ध जीव रहते सु विमल।
अंत अवस्था की पर्याय कही ध्रुव अचल और अनुपम,
तीन सौ तेतालिस घन राजू में अनंत जीवों का वास,पर
सुखिया वह जीव सदा ही जो रहता है अपने पास।।12।।

गर्वित ईश्वर मतावलंबी न जाने यह लोक स्वरूप,
निर्माणी सर्वज्ञ देव ने जाना सूक्ष्म लोक का रूप।
है अनंत आकाश मध्य यह पाँच द्रव्य सह लोक प्रबल,
वातवलयत्रय के कारण ही एकजगह यहलोक अचल।।13।।

इसप्रकार मुक्तिरानी उत्तम ऐसा प्राणेश चुने,
सर्व उपाधि रहित आत्मा ही मुक्ति का पति बने।
मैं आतम का रूप जान मुक्तिरानी का पति बनूँ,
जान लोकत्रय भेद-ज्ञान कर 'संयम' पथ का पथिक बनूँ।।14।।

गुरु भक्ति

- समकित जैन, ईसागढ़ (शास्त्री तृतीय वर्ष)

(तर्ज - जपि माला जिनवर नाम की)

हम देखी प्रभा मुनिराज की।
चित्त उछल अवलोकि मुनिन को, सिद्धि भई निज काज की।।

ज्यों गौरी पय सहजहिं उपजे, सहल हि प्रभा सिराज की।
त्यों अनुभव रस उपजे मुख तें, औषधि है भव खाज की।।1।।

जगत छोड़ि निज आतम ही में, दृष्टि धरें ज्यों बाज की।
मन कपि वश करि तीन रतन सौं, नींव धरी शिव राज की।।2।।

'समकित' बुध संजम उपाय से, पलटी दिशा जिहाज की।
भव को सिरा निकट ही तिष्ठै, जय जय तिन अधिराज की।।3।।

उपलब्धि द्वार

21 नवम्बर 2021 को सहजता दिवस के अवसर पर देश के गणमान्य अतिथियों की उपस्थिति में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र समकित जैन, ईसागढ़ (शास्त्री तृतीय वर्ष) को **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

मैं जैनी हूँ ये कम है क्या?

- अभिषेक जैन, देवराहा (शास्त्री तृतीय वर्ष)

मैं जैनी हूँ ये कम है क्या, कुछ और उपाधि क्या लेता?इसके आगे सब फीका है , ये जगत श्रेष्ठ मोती जैसा।

जिसकी तलहटी सदा शीतल, सर्वज्ञ का शासन चलता हो। उस शासन को समझाने का , गुरुओं का मेला लगता हो।। तो कैसे भला बताओ तुम, उनके चरणों में न झुकता? मैं जैनी हूँ ये कम है क्या , कुछ और उपाधि क्या लेता?।1।।

ये वही धर्म है जिसकी सुंदर लोरी जग में गूंजी थी। आप , आप का कर्ता है , मैं हूँ स्वतंत्र ये बोली थी।। अब क्या हो गया उठो जागो क्या अब ये गीतसुना सकता? मैं जैनी हूँ ये कम है क्या , कुछ और उपाधि क्या लेता?।।2।।

जिसके स्तंभ कुन्द मुनि हो , हो समंतभद्र से - वादार्थी। अकलंक देव से विदुर जहाँ, उस कुल के वंशज हम साथी।। तो बोलो उनके शब्दों की , जयमाला हृदय पिरो सकता? मैं जैनी हूँ ये कम है क्या , कुछ और उपाधि क्या लेता?।3।।

हम कैसे युद्ध हार सकते , हो कर्म प्रचंड भले हाथी? हम अनेकांत का शस्त्र लिए , ये युद्ध जीतते हैं साथी।। ये मृदुल बजा दो कह दो सबसे, ये वीर पुत्र सब कर सकता, मैं जैनी हूँ ये कम है क्या , कुछ और उपाधि क्या लेता?।४।।

मैं जैनी हूँ ये कहने से, जैनी ना कोई हो जाता। पर जन्म लिया जैनी कुल में, ये गर्व हमे हर क्षण हो ता।। इतना सौभाग्य हमारा है, इस कुल से धर्म बढ़ा सकता। मैं जैनी हूँ ये कम है क्या , कुछ और उपाधि क्या लेता?।5।।

रात्रिभोजन त्याग प्रेरणा

- आर्जव जैन, खड़ेरी (उपाध्याय कनिष्ठ)

(दोहा)

रात्रि में भोजन करन से , पापों की शुरुवात। पापों को तू छोड़ दे इतनी सी है बात।।1।।

(हरिगीतिका)

रात में भोजन करें जो, धर्म उनको प्राप्य ना। अन्न आदिक वस्तुएँ जो, रात में हैं खाद्य ना।। रात में भोजन करें तो, जीव का नित घात हो। जो रात्रि भोजन करें उनको, व्यसन पूरे सात हों ।।2।।

जो रुचि लगती हो तुम्हारी, यदि रात्रि भोज में। हिंसा भरी भीतर तुम्हारे, क्रूरता है सोच में।। रात में भोजन करो तो, घात होता है सदा। गर तुम अहिंसा वादी हो न, रात में खाना कदा।।3।।

जो जैन कहलाना तुम्हें निशि, भोज छोड़ो तुम अभी। प्रेरणा भी यही दो अरु, तुम भी न खाओ कभी।। घात हो उन जीव का जो, रात में तुमको दिखें। उन जीव का भी घात हो जो, कभी तुमको न दिखें।।3।।

रात में भोजन करें परिणाम होते क्रूर हैं। और जो ना करें उनके, पाप होते दूर हैं।। हे भाई! हम सब जैन हैं, उस धर्म का बहुमान कर। अरु धर्म का पालन करो, नित रात्रि भोजन त्याग कर।।4।।

जैनी का भूषण कहा , निशि भोजन का त्याग। इस ही से प्रारम्भ हो , मुक्ति महल का मार्ग।।5।।

सूचना पट्ट

- दिनाँक 25 दिसम्बर से 01 जनवरी तक **आ.समन्तभद्र खेल महोत्सव** सानन्द सम्पन्न।
- दिनाँक 02 जनवरी से 11 जनवरी तक **आ.अमृतचन्द्र सांस्कृतिक सप्ताह** का आयोजन होगा।
- दिनाँक 13 जनवरी से 16 जनवरी तक **अनुयोग चतुष्टय गोष्ठी शृंखला** होगी।
- 23 जनवरी से श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की **धार्मिक परीक्षाएँ** प्रारम्भ होंगी।
- 25 फरवरी से 27 फरवरी तक, **पंचकल्याणक वार्षिक महोत्सव** संपन्न होगा।

इतिहास कक्ष

बलिदान की अप्रतिममूर्ति : भामाशाह...

सुस्मित जैन,सेमारी (शास्त्री तृतीय वर्ष)

भारतवर्ष के इतिहास का प्रत्येक पन्ना जैनों की अविस्मरणीय गाथाओं को कहता है। उन्हीं में से विश्व की सर्वाधिक प्राचीन रियासतों में से एक मेवाड़ रियासत भी भामाशाह जैन ओसवाल[1] की गौरव गाथा को गा रहा है। ऐसे गौरवमयी व्यक्तित्व के जीवन संबंधी ऐतिहासिक पन्ने इस प्रकार हैं:-

प्रधान-पद नियुक्ति:- सैन्य अभियानों में प्रदर्शित कुशल नेतृत्व-क्षमता तथा राज्य के लिये धन-व्यवस्था संबंधित कार्यवाही की कुशलता को देखकर 1578 ई.स. के लगभग महाराणा प्रताप ने भामाशाह को पूर्व-प्रधान रामा महासाणी के स्थान पर राज्य के प्रशासनिक सर्वोच्च पद, प्रधान (दीवान) और युद्ध मंत्री[2]का उत्तरदायित्व दिया। उस समय तक भामाशाह की आयु 30 वर्ष से अधिक हो चुकी थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भामाशाह के सम्बन्ध में महाराणा प्रताप का निर्णय सर्वथा सही और दूरदर्शितापूर्ण सिद्ध हुआ।[3]

हल्दीघाटी - युद्ध में वीरत्व प्रदर्शन:- इतिहास में सर्वाधिक प्रसिद्ध हल्दीघाटी का युद्ध अकबर के सेनापति सवाई मानसिंह और मेवाड़ के शासक महाराणा प्रताप के बीच लड़ा गया था। जिसमें महाराणा प्रातप की सेना के दाएँ भाग में ग्वालियर के राजा रामसिंह तंवर के साथ भामाशाह जैन व उनके छोटे भाई ताराचंद जैन अपने दल के सेनापति थे। मेवाड़ी सेना के हरावंल के आक्रमण ने मुगल सेना को 6 कोस (1.6 km) दूर बनास नदी तक खदेड़ दिया और उससे महाराणा प्रताप की जीत लगभग निश्चित हो गई थी। भामाशाह और उसके भाई ताराचंद ने उस युद्ध में जो युद्ध-कौशल, वीरता और शौर्य-प्रदर्शन किया था। उसके कारण ही बाद में उनको राज्य के शासन की बड़ी जिम्मेदारियाँ दी गई।[5]

दान की पराकाष्ठा:- भामाशाह जैन ओसवाल ने सम्पूर्ण जीवन में एकत्रित की हुई स्व-संपत्ति और पैतृक-संपत्ति सहित मालवा पर आक्रमण कर प्राप्त हुए 25 लाख रूपए और 20 हजार अशर्फियाँ 'चुलिया' नामक ग्राम में महाराणा प्रताप को प्रदान की, जिससे 25 हजार सैनिकों की 12 वर्ष तक व्यवस्थित सुविधा हो सकती थी।[6]इसी दानवीरता से भामाशाह ने इतिहास जगत में दानश्रेष्ठी का सम्मान प्राप्त किया। जैसे इतिहास में महाराणा प्रताप की वीरता प्रसिद्ध है, वैसे ही भामाशाह की दानवीरता प्रसिद्ध है।

मेवाड़ में भामाशाह के वंशजों का सम्मान:- राणा कर्णसिंह (1620-1628 ई.स.) ने आदेश जारी किया था कि 'जब भी महाजनों में समस्त जाति समुदाय का भोजन आदि कार्य होगा, तब भामाशाह के प्रमुख वंशधर का प्रथम तिलक होगा।'[9] भामाशाह के पौत्र अक्षयराज को प्रथम तिलक हुआ। यही परम्परा आज तक चली आ रही है। आज भी उदयपुर स्थित भामाशाह वंशज ओसवाल जैन कावड़िया परिवार के प्रमुख का ही पहले तिलक होता है।

भामाशाह योजना:- राजस्थान की सुप्रसिद्ध भामाशाह योजना भी इन्हीं दानश्रेष्ठी भामाशाह जैन ओसवाल के नाम पर है।

इतिहास शब्द का अर्थ:- 'इति इह आसीत्' अर्थात् यहाँ ऐसा हुआ था। जो वास्तव में इस धरा पर हुआ था; उसे इतिहास, इतिवृत्त तथा ऐतिह्य कहते हैं।[10] इतिहास के जीवंत उदाहरणों के माध्यम से हम अपने जीवन में अनेक शिक्षाएँ प्राप्त कर सकते हैं; अतः इतिहास का औचित्य सिद्ध होता है।

तथ्य

लोक नाड़ी की ऊँचाई -
14 राजू
त्रस नाड़ी की ऊँचाई -
कुछ कम(3,21,241.66 धनुष) 13 राजू

1.कर्नल जेम्स टॉड कृत Annals and Antiquities Of Rajasthan, परिशिष्ट, पृ.-222; लोकेश शर्मा, प्रकाशन- साहित्यागार, जयपुर
2.Annals and Antiquities Of Rajasthan, पृ.-187, कर्नल जेम्स टॉड, अनुवादक - केशव ठाकुर, प्रकाशन - साहित्यागार, जयपुर
3.कर्नल जेम्स टॉड कृत Annals and Antiquities Of Rajasthan, परिशिष्ट, पृ.223
4.उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ.431; गौरीशंकर हीराचंद ओझा प्रकाशन- राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
5.अल-बदायुनी कृत मुन्तखाब-उत-तवारीख (साभार- Annals and Antiquities Of Rajasthan)
6.Annals and Antiquities Of Rajasthan, पृ.-187
7.Annals and Antiquities Rajasthan, परिशिष्ट, पृ.224
8.उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ.449
9.वीर विनोद, भाग-2, पृ.217, श्यामलदासजी
10.आदिपुराण, पर्व-1, श्लोक-25

क्या चाणक्य जैन मुनि थे?

आयुष जैन, उदयपुर (उपाध्याय कनिष्ठ)

ई.पू. चौथी शताब्दी के आस-पास अध्यात्म-वादियों ने जिसप्रकार अध्यात्म एवं दर्शन के द्वारा समाज के नव-निर्माण में अपना योगदान दिया, उसीप्रकार राजनीति विशारदों ने भी उसमें अपनी अहम् भूमिका अदा की। इस दिशा में प्लेटो, अरस्तू एवं आचार्य चाणक्य के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सम्पूर्ण जगत यह तो जानता है कि आचार्य चाणक्य ब्राह्मण थे; परंतु चंद्रगुप्त मौर्य को राजा बनाने के बाद उनके जीवन से सभी अनभिज्ञ हैं, जिसका उल्लेख जैन ग्रंथों में मिलता है।

'उनका काल सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, के समकालीन माना गया है। चाणक्य ई.पू. चौथी शताब्दी में भारत भूमि को अलंकृत कर रहे थे।' अनेक जैन ग्रंथो के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उन्होंने अंत समय में जैन मुनि दीक्षा धारण की थी। जिसके निम्लिखित प्रमाण द्रष्टव्य हैं:-

1. चाणक्य ने जब जाना कि नन्दवंश को जड़मूल से हटाने का लक्ष्य अब पूर्ण हो गया है, तब उन्होंने अपने आन्तरिक कषाय भावों का क्षय कर स्वयं को अध्यात्म के ढाँचे में ढाल दिया। अन्ततः चाणक्य ने अपने 500 शिष्यों सहित भगवती जिनदीक्षा धारण की व कठोर तपश्चर्या करते हुए अन्त में पाटलिपुत्र से महाकौञ्चपुर के गोकुल नाम के स्थान में ससंघ पहुँचकर कायोत्सर्ग-मुद्रा धारण की।

2. चाणक्य ने शीघ्र ही अत्यन्त चतुराई पूर्वक सभी को सुसंगठित कर नन्द वंश का विनाश किया तथा चन्द्रगुप्त[3] को कुसुमपुर (पाटलिपुत्र)[4] का राजा बनाया। अपना लक्ष्य पूरा कर[5] चाणक्य ने जिनदीक्षा धारण की। सिरिचन्द कृत 'कहकोसु' एवं नेमिदत्त कृत आराधनाकथाकोष में भी चाणक्य की यही कथा मिलती है।

3. कुछ श्वेताम्बर ग्रंथों में भी आचार्य चाणक्य की कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जिसमें उन्हें जैन मुनि कहा गया है। उन ग्रंथों के नाम इसप्रकार हैं:- आवश्यक-सूत्रवृत्ति, आवश्यक-नियुक्तिचूर्णि, उत्तराध्ययनसूत्र टीका एवं परिशिष्टपर्व।

जैनेतर साहित्य में चाणक्य के उत्तरवर्ती जीवन के विषय क्यों नहीं की गई है। इसका सम्भवतः एक कारण यह भी हो सकता है कि चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक के कुछ वर्षों के बाद ही चाणक्य ने जैन मुनिपद धारण कर लिया था।

इसी कारण उन्होंने सम्भवतः उनके उत्तरवर्ती जीवन की उपेक्षा की। इस प्रसंग में सुप्रसिद्ध इतिहासकार राइस डेविड्स का यह कथन पठनीय है-

The Linguistic and Epigraphic evidence so far available confirms in many respects the general reliability of traditions current amongst the Jainas.

अनुवाद- बहुभाषा एवं पाण्डुलिपि संबंधी साक्ष्य, जो आज उपलब्ध हैं, वे कई मामलों में पुष्टि करते हैं कि जैनों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी परंपरा विश्वसनीय है।

'तीर्थंकरों का धर्म' इस पुस्तक में लेखक ने इस विषय पर विस्तार से विचार किया है और स्पष्ट रूप से सिद्ध किया है कि **चाणक्य जैन माता-पिता से पैदा हुए थे, जीवन-भर आस्था से जैन बने रहे और एक जैन तपस्वी के रूप में अपना जीवन-यापन किया।** इस संबंध में दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा दोनों एकमत हैं।'[7]

उन्होंने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में अद्भुत लौकिक सिद्धान्तों की रचना की। उस काल में अध्यात्म-विद्या का ज्ञान मौखिक रूप से ही होता था, लिखित नहीं; अतः आपने कोई अध्यात्म विषयक ग्रंथ की रचना नहीं की।

जैन इतिहास में वे गृहस्थाश्रम में कुटिल राजनीतिज्ञ होने पर भी अंतरंग से अत्यंत कोमलहृदयी थे। अतः राजकार्य समाप्त होने पर तुरंत नग्न दिगंबर जिनदीक्षा धारण कर घोर तपश्चर्या कर समाधि-मरण युक्त आत्म-साधना का सम्यक् मार्ग द्योतित कर सभी जीवों के आदर्श बन गए। अस्तु...

तथ्य

- नारद और रुद्र का जन्म केवल हुण्डावसर्पणी काल में ही होता है।
- सबसे ज्यादा गणधर - 6 वें सुमतिनाथ तीर्थंकर - 116 गणधर - प्रमुख गणधर का नाम अमर था।

1.भगवान महावीर की आचार्य परम्परा, पृ. 36
2.भगवान महावीर की आचार्य परम्परा, पृ. 37
3.हरिषेणाचार्य कृत बृहत्कथाकोष, श्लोक- 83,84
4.Muni Sricandra's KAHA KOSU Pg.143
5.आराधना कथा कोश, भाग-३, पृ. 355
6.भद्रबाहु चाणक्य कथानक भद्रबाहु एवं राजा कल्कि वर्णन; महाकवि रहधू कृत, पृ.23
7.Jain Journal volume 9, July 1974 no.1, Pg.37,38

गोष्ठी कक्ष

सप्तभंग में एवकार और अपिकार

सहज जैन, छिंदवाड़ा (शास्त्री प्रथम वर्ष)

इस विषय को हम 4 बिंदुओं के माध्यम से देखेंगे:-

1. सप्तभंगी क्या है?
2. एवकार और अपिकार का आचार्यों द्वारा प्रयोग।
3. दुर्नय-सप्तभंगी और दुष्प्रमाण-सप्तभंगी।
4. एवकार और अपिकार में अविरुद्धता की सिद्धि।

1. सप्तभंगी क्या है?

आचार्य अभिनव धर्मभूषण यति 'न्यायदीपिका' ग्रन्थ में लिखते हैं कि सात भंगों के समूह को सप्तभंग कहते हैं और यहाँ भंग शब्द वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादक है। सप्तभंगी के दो भेद हैं- प्रमाण-सप्तभंगी और नय-सप्तभंगी।

2. एवकार और अपिकार का आचार्यों द्वारा प्रयोग:-

एवकार का सामान्य अर्थ होता है 'ही' और अपिकार का सामान्य अर्थ होता है 'भी'।

अनेक आचार्यों ने एवकार और अपिकार का प्रयोग अपने ग्रंथों में किया है; जैसे- माइल्लधवलाचार्य द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र में तथा जयसेनाचार्य प्रवचनसार की 115वीं गाथा और पञ्चास्तिकाय की 14वीं गाथा की टीका में लिखते हैं कि 'नय-सप्तभंगी सो एवकार और प्रमाण-सप्तभंगी सो अपिकार।'

इसे हम एक उदाहरण के माध्यम से समझते हैं; जैसे- जीव कथंचित सत् भी है और कथंचित् असत् भी है - यह प्रमाण सप्तभंगी का उदाहरण है तथा जीव स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव की अपेक्षा सत् ही है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव की अपेक्षा असत् ही है - यह नय सप्तभंगी का उदाहरण है।

इसीप्रकार आचार्य समंतभद्र देव आप्तमीमांसा[1] और युक्त्यनुशासन[2] में तथा आचार्य विद्यानन्दि स्वामी तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक[3] में एवकार और अपिकार का प्रयोग करते हैं। विद्वत् भाषा में कहें तो अनुक्त की सत्ता का सूचक सो अपिकार और दृढ़ता का सूचक सो एवकार।

3. दुर्नय और दुष्प्रमाण सप्तभंगी:-

यदि बिना स्यात् पद लगाए भी का प्रयोग किया जाए तो वह दुष्प्रमाण सप्तभंगी है और यदि अपेक्षा बताये बिना ही का प्रयोग किया जाए तो वह दुर्नय सप्तभंगी है।

यहाँ पर एक बात अवश्य ध्यान रखने योग्य है कि यदि कहीं आचार्यों ने स्यात् पद न लगाया हो या फिर अपेक्षा न बतायी हो तो वहाँ पर क्या विवक्षा लगायी गई है, यह प्रकरणानुसार ध्यान रखना चाहिए।

4. एवकार और अपिकार में अविरुद्धता की सिद्धि:-

कुछ विचारक भेदों में उलझकर भी को समन्वय का और ही को हट का सूचक मान लेते हैं। उनके अनुसार तो जैन मत में ही का कोई प्रयोजन ही नहीं है; परंतु यह मात्र उनका एक मानसिक भ्रम है। असल में तो भी अन्य के बारे में मौन रहकर भी उसकी निश्चित सत्ता का सूचक है और ही दृढ़ता का सूचक है। स्याद्वाद शैली में जितना प्रयोजन भी अर्थात् अपिकार का है, उतना हि प्रयोजन ही अर्थात् एवकार का है। एक के अभाव में दूसरे का सद्भाव संभव ही नहीं है।

अपूर्ण को पूर्ण न समझ लिया जाए; इसीलिए भी का प्रयोग किया जाता है और यही सम्यक् अनेकान्त है। अंश के बारे में जो कहा गया है, वह अपेक्षा से पूर्णतया सत् ही है; इसीलिए ही का प्रयोग किया जाता है और यही सम्यक् एकान्त है।

अब यहाँ कोई प्रतिवादी **प्रश्न** करे कि अनेकान्त में एकान्त कैसे?

तो उसे **उत्तर** देते हैं कि - हे भाई! यदि अनेकान्त को भी एकान्त रूप से ग्रहण करोगे तो वह मिथ्या ही होगा; क्योंकि जैनमत में तो अनेकान्त में भी अनेकान्त है। अनेकान्त में तो सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्त - ये दोनों रूप बनते हैं। डॉ. हुकमचन्द भारिल्लजी की भाषा में कहें तो स्याद्वादी 'ही' की ठोस भूमि पर खड़ा होकर 'भी' का झंडा लहराता है।

उक्त सम्पूर्ण चर्चा से यह सिद्ध होता है कि एवकार और अपिकार एक दूसरे के विरोधी नहीं; अपितु एक दूसरे के पूरक ही हैं।

तथ्य

गुरु= ग्+उ+र्+उ

गंभीर, उदार एवं रहस्य उद्घाटक।

1. आप्तमीमांसा, श्लोक-१५
2. युक्त्यानुशासन, श्लोक-४१,४२
3. तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक, श्लोक-६३

अध्यात्म का मूल : न्याय

आर्जव माहप, जालना (उपाध्याय वरिष्ठ)

अध्यात्म और न्याय क्या है? - यह जानना बहुत आवश्यक है; क्योंकि इसके जाने बिना अध्यात्म का मूल न्याय है - यह समझा नहीं जा सकता।

अध्यात्म शब्द अधि+आत्म से बना है। अधि अर्थात् मुख्य, जिसमें आत्मतत्त्व मुख्य हो, वह अध्यात्म है।

'नीयते परिच्छिद्यत्वे वस्तुतत्त्वं येन स न्याय:' अर्थात् जिससे वस्तुस्वरूप को भलीभांति जाना जाए, वह न्याय है। न्याय के सन्दर्भ में प्रमेयरत्नमाला में श्रीमल्लघुनंतवीर्य लिखते हैं कि 'नयप्रमाणात्मको न्यायः' अर्थात् न्याय नय-प्रमाणात्मक है।

आगम उल्लेखों से सिद्ध अध्यात्म का मूल न्याय:- तत्त्वार्थसूत्र में आचार्य उमास्वामी लिखते हैं -'प्रमाणनयैरधिगम:' अर्थात् प्रमाण और नयों के द्वारा सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि तत्त्वार्थों का ज्ञान होता है। उक्त सूत्र को उद्धृत करते हुए न्यायदीपिका में अभिनव धर्मभूषण यति लिखते हैं - 'प्रमाणनयाभ्यां हि विवेचिता जीवादय: सम्यगधिगम्यन्ते' प्रमाण और नय से ही विवेचित जीवादि का सम्यग्ज्ञान होता है। प्रमाण और नय को छोड़कर जीवादि जानने का कोई अन्य उपाय नहीं है।

अध्यात्म का मूल न्याय है:- यह सिद्धचक्र विधान में सिद्ध किया गया है, इससे संबंधित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

जाकरि निश्चय कीजिये , वस्तु प्रमेय अपार।
सो तुमसे परगट भयो, न्याय शास्त्र रुचि धार॥

द्रव्यस्वभाव प्रकाशक नयचक्र की 266वीं गाथा के अनुसार तत्त्व-अन्वेषण काल में समय(शुद्धात्मा) को युक्ति से अर्थात् नय-प्रमाण द्वारा पहले जाना जाता है, पश्चात् अनुभव-काल में नय-प्रमाण नहीं होते हैं; क्योंकि वह अनुभव प्रत्यक्ष ही है।

इसी सन्दर्भ में छहढालाकार पं. दौलतरामजी कहते हैं 'परमान नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखे।'

इसप्रकार यहाँ यह स्पष्ट होता है कि तत्त्वविचार के लिए न्याय मूल है तथा आत्मानुभूति की प्रारंभिक भूमिका ही तत्त्वविचार है; अतः आगम उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि अध्यात्म का मूल न्याय है।

सिद्धान्तों से सिद्धि:- न्याय में परीक्षा मुख्य है। अभिनव धर्मभूषण यति न्यायदीपिका में लिखते हैं - 'विरुद्धनानायुक्ति-प्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो विचारः परीक्षा' अर्थात् विरोधी नाना युक्तियों की प्रबलता और दुर्बलता का निर्णय करने के लिए प्रवृत्त विचार परीक्षा है। इसी पद्धति के अन्तर्गत सच्चे देव का निर्णय व उनकी परीक्षा की जाती है, जैसे - आप्तमीमांसा, आप्तपरीक्षा आदि शास्त्रों में की गई है।

आचार्य माणिक्यनन्दि परीक्षामुख में तर्क को बताते हुए कहते हैं - 'उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूह:' अर्थात् कार्य के होने पर कारण का होना, अन्वय है और कारण के अभाव में कार्य का न होना, व्यतिरेक है; जैसे - आत्मा में द्रव्यकर्म के होने पर रागादि का होना और रागादिक के न होने पर द्रव्यकर्म का न होना।

न्याय को सही तरह से समझे बिना अध्यात्म को सही तरह से समझा नहीं जा सकता। न्याय जीव के रागादि रोग मिटाने मे प्रथमौषधि के समान है अर्थात् न्याय ही अध्यात्म का मूल है, यह सिद्ध होता है।

प्रत्येक वस्तु उसके स्वभाव से पहचानी जाती है। आत्मा का स्वभाव चेतना अर्थात् ज्ञान-दर्शन है। वह ज्ञान-दर्शन कैसा है? इस संबंध में परीक्षामुखकार कहते हैं कि 'नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्' अर्थात् पदार्थ और प्रकाश ज्ञान का कारण नहीं हैं; क्योंकि पदार्थ और प्रकाश ज्ञान के ज्ञेय हैं; क्योंकि वह ज्ञान उनसे उत्पन्न नहीं होता है, वह तो स्वयं सिद्ध है।

इसीप्रकार कौन- सा ज्ञान किस पदार्थ को जानता है, यह निश्चित है कि नहीं? तो इसकी निश्चितता न्याय पद्धति से सिद्ध करते हैं कि स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियत-मर्थं व्यवस्थापयति अर्थात् अपने कर्मों के आवरण का क्षयोपशम है लक्षण जिसका - ऐसी योग्यता ही प्रतिनियत अर्थ को जानने की व्यवस्था करती है। इस ज्ञान का यह पदार्थ ही विषय है, अन्य नहीं। - ऐसी व्यवस्था को प्रतिनियत व्यवस्था कहते हैं। आत्मा ज्ञान के द्वारा स्वाधीनरूप से जानता है; इसप्रकार न्याय में स्वाधीनता का भान कराया जाता है।

न्याय में सर्वज्ञसिद्धि करके सर्वज्ञ की सत्ता का श्रद्धान कराया जाता है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में सर्वपदार्थ जानने में आते हैं 'सर्वं जानातीति सर्वज्ञ:'।

आत्मा का हित आत्मा को जानने-पहिचानने में ही है। जान-पहिचान से पूर्व उसका निर्णय आवश्यक है। यह सब न्याय से ही संभव है। आत्मा का निर्णय करना ही अध्यात्म है; अत: न्याय के बिना अध्यात्म की चर्चा ही संभव नहीं है।

इसप्रकार न्याय में क्रमबद्धपर्याय, वस्तुव्यवस्था और सर्वज्ञता का श्रद्धान कराया जाता है; अतः यह सिद्ध होता है कि अध्यात्म का मूल : न्याय है।

गुणस्थान को जानने से लाभ

अविरल जैन, खानियाँधाना (शारत्री प्रथम वर्ष)

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए सात तत्त्व एवं सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान होना आवश्यक है तथा उनका सम्यग्ज्ञान करने के लिए गुणस्थानों का स्वरूप जानना अत्यंत आवश्यक है।

गुणस्थान निर्देश का प्रयोजन बताते हुए आचार्य अकलंकदेव तत्त्वार्थराजवार्तिक में लिखते हैं कि ' तस्य संवरस्य विभावनार्थं गुणस्थान-विभागवचनं क्रियते।' उस संवर के स्वरूप का विशेष परिज्ञान करने के लिए चौदह गुणस्थानों का विभाग किया जाता है। संवर मोक्षमार्ग है और आनंदमय दशा है तथा उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि संवरादि का विशेष ज्ञान करना हो तो गुणस्थानों को जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1. देव-शास्त्र-गुरु की यथार्थ भक्ति:- जो हमारे धर्म के आधार हैं और सदैव स्मरणीय हैं, उनकी यदि हमें यथार्थ भक्ति करनी हो तो गुणस्थानों का ज्ञान करना अत्यावश्यक है। कोई कहे कि उनके समवशरण है और उत्कृष्ट संहनन है, इसीलिए वे पूज्य हैं; परंतु ऐसा नहीं है। वास्तव में उनके पूज्यत्व का कारण तो १३वें गुणस्थान में प्रकट हुई वीतरागता, सर्वज्ञता व हितोपदेशिता ही है तथा उस वीतरागता और सर्वज्ञता का ही पोषण करने वाली होने से वह जिनवाणी भी पूज्य है। छठवें-सातवें गुणस्थान में तीन कषाय चौकड़ी के अभाव पूर्वक स्वरूप में स्थिरता होने के कारण प्रचुर स्वसंवेदन ही उनके पूज्यत्व का कारण है; इसप्रकार देव-शास्त्र-गुरु के वास्तविक स्वरूप को समझकर जो भक्ति प्रगट होती है - वह ही यथार्थ भक्ति है।

2. कर्ता-कर्म की बुद्धि मिटती है:- गुणस्थानों के स्वरूप को समझकर हमारे कर्ता-कर्म की बुद्धि मिटती है। हमने गुणस्थानों के स्वरूप में समझा था कि मोह और योग के निमित्त से होने वाले जीव के श्रद्धा और चारित्र गुण की तारतम्यरूप अवस्था को गुणस्थान कहते हैं। इसे पढ़कर समझ सकते हैं कि जीव और कर्मों में परस्पर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, न कि कर्ता-कर्म सम्बन्ध। जैसे हमारी भावना होती है कि हम सीधे छठवें-सातवें गुणस्थान में पहुँच जाएँ; परंतु इसे पढ़कर समझ में आता है कि गुणस्थानों का बढ़ना कषायों के अभाव में होता है, न कि भावनानुसार।

3. बाह्य आचरण से गुणस्थानों का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है:- प्रत्येक गुणस्थान के अलग अलग असंख्यात प्रकार के औदयिक भाव होते हैं; क्योंकि कषायों का उदय असंख्यात प्रकार का है। पं. टोडरमलजी मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवे अधिकार में निर्जरा तत्त्व सम्बन्धी भूल में लिखते हैं कि ' चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव आत्मचिन्तवन आदि कार्य करे तो भी निर्जरा नहीं है और पंचम गुणस्थानवर्ती जीव विषय-सेवन आदि भी करे तो भी गुण श्रेणी निर्जरा कही गई है।' अतः हमें बाह्य प्रवृत्ति में मूढ़ता छोड़ना योग्य है।

4. क्रमबद्धपर्याय की यथार्थ स्वीकृति होती है:- प्रत्येक गुणस्थान में रहने वाले जीवों की संख्या निश्चित है, उनके उस गुणस्थान में रहने का समय भी निश्चित है। समय और संख्या निश्चित होने के कारण उनके परिणाम भी निश्चित हैं। जैसे चौदहवें गुणस्थान में 598 जीवों की संख्या निश्चित है और उपशम श्रेणी चढ़ने वालों की संख्या 2 करोड़ 96 लाख 99 हजार 103 है। उसे न कोई बढ़ा सकता है, न ही घटा सकता है। हम किसी भी जीव को न तो सम्यग्दृष्टि बना सकते हैं और न ही मिथ्यादृष्टि। इससे दूसरों को समझाने का राग व्यर्थ लगता है एवं क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति होती है।

5. केवलज्ञान की बहुत महिमा आती है:- यदि हमें सर्वज्ञता की झलक देखनी है तो गुणस्थानों से केवलज्ञान की झलक मिलती है। गुणस्थानों में जीवों के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव होते हैं, उन भावों को केवलज्ञानी ही स्पष्ट जान सकते हैं। केवलज्ञान से सर्वज्ञता और सर्वज्ञ स्वाभावी आत्मा की महिमा आती है।

6. तत्त्वज्ञान की निर्मलता होती है:- हमने पढ़ा और सुना है कि गुणस्थान पढ़ने से तत्त्वज्ञान निर्मल होता है, तो कैसे होता है? हमनें समयसार में पढ़ा है कि स्वभाव और विभाव भिन्न हैं। अब गुणस्थानों में देखते हैं कि चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्व है, पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व है और 13वें गुणस्थान में अरिहंत दशा है। उसमें ज्ञायक तो सदा एक जैसा विद्यमान है। समयसार की छठवीं गाथा में आता है कि आत्मा प्रमत्त और अप्रमत्त दोनों ही नहीं है, क्यों नहीं है? क्योंकि ये कर्म-सापेक्ष हैं और आत्मा सदा कर्म निरपेक्ष भावरूप है - ऐसा स्वरूप समझ में आना ही तत्त्वज्ञान निर्मल होना कहलाता है।

7. पर्यायों की स्वतंत्रता का ज्ञान होता है:- पर्यायों की ऐसी स्वतंत्र योग्यता है कि सातवें गुणस्थानवर्ती मुनि उपशम श्रेणी चढ़ेंगे या क्षपक श्रेणी? - यह उन्हें स्वयं ही ज्ञात नहीं होता है। उपशम श्रेणी वाले अंतर्मुहूर्त में गुणस्थानों से नीचे गिरेंगे और पर्याय की स्वतंत्रता यहाँ तक है कि वे मिथ्यादृष्टि भी हो सकते हैं। मिथ्यादृष्टि होकर संसार में अर्द्धपुद्गल परावर्तन तक भी घूम सकते हैं।

8. अंत में हमारा पुरुषार्थ कहाँ रह जाता है?:- तात्पर्य यह है कि गुणस्थान के विषय को पढ़कर कोई गुणस्थान वृद्धि का उद्यम करना चाहे तो करणानुयोग अनुसार नहीं होगा। उद्यम तो द्रव्यानुयोग अनुसार ही होगा। हमें तो बुद्धि पूर्वक तत्त्वाभ्यास ही करना चाहिए, फिर चाहे कर्मों का उपशम हो या क्षयोपशम हो या फिर क्षय हो।

इसप्रकार हमनें गुणस्थानों को जानने से लाभ समझा।

अनसुनी कथा कक्ष

स्वस्ति जैन, जयपुर (शास्त्री तृतीय वर्ष)

राजा श्रेणिक : मूर्ख या बुद्धिमान?

जय जिनेन्द्र.... मेरा नाम है 'अनसुनी कथा'। आप सभी का मेरे इस कक्ष में स्वागत है। चलिए! आज मैं आपको ले चलती हूँ राजगृही नगरी (वर्तमान राजगीर, बिहार के पास) में राजा श्रेणिक (ई.पू. छठवीं शताब्दी) के पास।

बात उस समय की है जब वचनबद्धता और आगामी आक्रमण के भय से राजा उपश्रेणिक द्वारा अपने पुत्र श्रेणिक को देश से निष्कासित कर दिया गया। नगर से दूर जाते हुए मार्ग में राजा श्रेणिक की भेंट वेणपद्म नगर के इंद्रदत्त सेठ से हुई। एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करके वे दोनों आगे के मार्ग में साथ चलने लगे। श्रेणिक ने सेठ को 'मामा' कहकर संबोधित किया और कहा कि मार्ग की थकावट को दूर करने के लिए हम दोनों **'जिह्वारूपी रथ' पर सवार होकर चलें।** यह सुनकर सेठ को बहुत आश्चर्य हुआ पर वे चुप रहे। पुन: कुछ आगे चलकर एक नदी को उन्होंने जूते पहनकर पार किया और अत्यंत शीतल छाया युक्त **वृक्ष के नीचे छतरी तानकर विश्राम किया।** आगे चलते हुए उन्हें एक संपन्न नगर दिखा, तब श्रेणिक ने पूछा कि हे मातुल! **यह नगर बसा हुआ है या उजड़ा हुआ है?** आगे मार्ग में एक मरे हुए मनुष्य को देखकर उन्होंने पूछा कि **यह आज का मरा है अथवा पहले का ही मरा हुआ है?**

इसप्रकार मार्ग में चलते हुए विभिन्न दृश्यों को देखकर श्रेणिक ने अनेक विचित्र प्रश्न पूछे। राजा श्रेणिक के ऐसे प्रश्नों को सेठ इंद्रदत्त विचारहीन मानकर उन्हें मूर्ख समझने लगे।

वेणपद्म नगर पहुँचकर श्रेणिक नगर के बाहर ही तालाब के पास ठहरे और सेठ अपने भवन को लौट गए। पहुँचने पर उसकी पुत्री नंदश्री ने जिज्ञासा पूर्वक पूछा कि यात्रा में आपको किसी विशिष्ट पुरुष की सहभागिता मिली अथवा एकाकी विचरण किया? तब सेठ ने राजा श्रेणिक का परिचय देते हुए उनके रूप, तेज, लावण्य और बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए कहा कि यद्यपि वे पूर्ण योग्य हैं; परंतु **वे कुछ मूर्ख प्रतीत होते हैं** – ऐसा कहकर सेठ ने सम्पूर्ण वृत्तांत कह सुनाया।

यह सब सुनकर बुद्धिमती नंदश्री कुछ मुस्कुराते हुए बोली कि हे तात! वे कुमार मूर्ख नहीं हैं; अपितु अत्यंत चतुर और बुद्धिमान हैं।

उन्होंने जो आपको 'मामा' कहकर पुकारा उसका मतलब यह था कि संसार में भांजा अत्यन्त माननीय एवं प्रिय होता है - इसतरह उन्होंने आपसे प्रेम की आकांक्षा की तथा **जिह्वारथ का अर्थ कथा-कौतूहल** है अर्थात् मार्ग की थकावट को कथा-कौतूहल से दूर करने की बात कही थी। नदी के जल के भीतर बहुत से पत्थरों के टुकड़े एवं कंटक पड़े रहते हैं, सर्प आदिक जीव भी रहते हैं; अतः जूते पहनकर जाना बुद्धिमानी ही है। इसीतरह **वृक्ष की छाया में छतरी लगाकर बैठने से पक्षी आदि जीवों की बीट से बचा जा सकता है।**

हे तात! भले प्रकार बसा हुआ नगर वही कहा जाता है, जो नगर उत्तम धर्मात्मा मनुष्य, जिन प्रतिबिम्ब, जिन चैत्यालय एवं उत्तम यतीश्वरों से अच्छी तरह परिपूर्ण हो और उससे भिन्न नगर उजड़ा हुआ कहा जाता है; इसलिए **'यह नगर बसा हुआ है अथवा उजड़ा हुआ?'** कुमार का यह प्रश्न भी विचारपूर्ण था। मरे मनुष्य को देखकर प्रश्न करना भी बड़ी चतुरता से परिपूर्ण था; क्योंकि जो मनुष्य धर्मात्मा, दयावान, ज्ञानवान, विनय से उत्तम पात्रों को दान देनेवाला एवं समस्त जगत में यशस्वी होता है, उसे उसकी मृत्यु होने पर मरा हुआ कहा जाता है और इससे भिन्न जो मनुष्य दानरहित, कामी और पापी होता है, उसको **संसार में पहले से ही मरा हुआ कहा जाता है।**

इसलिए उक्त प्रश्नों से कुमार श्रेणिक अत्यन्त निपुण, विद्वानों के मन का हरण करनेवाले, समस्त कलाओं में प्रवीण और अनेक प्रकार के शास्त्रों में चतुर हैं - ऐसा समझना चाहिए। इसलिए उक्त प्रश्नों से कुमार श्रेणिक अत्यन्त निपुण, विद्वानों के मन का हरण करनेवाले, समस्त कलाओं में प्रवीण और अनेक प्रकार के शास्त्रों में चतुर हैं - ऐसा समझना चाहिए।

इसप्रकार श्रेणिक की बुद्धिमत्ता की चर्चा सुन नंदश्री मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें संदेश भिजवाकर अपने भवन में बुलवाया। श्रेणिक की कुशलता को प्रत्यक्ष देखने की इच्छा से नंदश्री ने द्वार के बाहर कीचड़ डलवाकर कुछ-कुछ दूरी पर ईंटें रखवाईं। श्रेणिक ने सोचा कि यदि ईंटों के ऊपर से चलकर गया और फिसल गया, तो हँसी का पात्र बनूँगा; इसकारण वे अपने बुद्धि-चातुर्य का प्रयोग करते हुए कीचड़ में से होकर ही द्वार तक पहुँचे। कुमारी नंदश्री के द्वारा की गई अन्य परीक्षाओं में भी श्रेणिक **अपनी चतुरता और बुद्धिमत्ता से इसीतरह उत्तीर्ण हुए।** यह देखकर नंदश्री बहुत प्रभावित हुई और उनके साथ विवाह करने का निश्चय किया।

तत्पश्चात् उन दोनों का पंचों की उपस्थिति में विधिवत विवाह सम्पन्न हुआ।

इसप्रकार आज की कथा यहीं पूर्ण होती है। आशा करती हूँ कि आपको मेरे कक्ष में पधारकर अवश्य ही प्रसन्नता हुई होगी। अब मैं 'अनसुनी कथा' आपसे विदा लेती हूँ.....

काव्यार्थ कक्ष

आत्मा और ज्ञान का एकीकरण

- चेतन जैन, मुहाना (शास्त्री द्वितीय वर्ष)

आत्माज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारीणाम्।।

संदर्भः- प्रस्तुत छन्द आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित समयसार ग्रंथ की आचार्य अमृतचंद्र देव विरचित आत्मख्याति टीका में 62वाँ कलश है।

प्रसंगः- इस श्लोक में बताया है कि यह आत्मा किसका कर्ता है और किसका नहीं?

अन्वयः- ज्ञानम् (स्वभावी) आत्मा स्वयं ज्ञानम् करोति। ज्ञानात् अन्यत् करोति किम्? 'आत्मा परभावस्य कर्ता' अयम् व्यवहारीणाम् मोहः (अस्ति)।

शब्दार्थः- ज्ञानम् आत्मा- ज्ञानस्वभावी जीव, स्वयं- अपने, ज्ञानम्- ज्ञान को, करोति- करता है, ज्ञानात्- ज्ञान से, अन्यत्- भिन्न, करोति- करता है, किम्- क्या?, आत्मा- जीव, परभावस्य- परभाव का, कर्ता- करता है, अयं- यह, व्यवहारीणाम्- व्यवहारीजनों का, मोहः- मोह, (अस्ति- है)।

अर्थः- आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव का कर्त्ता है; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने भावों का कर्ता होता है और आत्मा ज्ञानस्वभावी है; अतः आत्मा अपने ज्ञान स्वभाव का ही कर्त्ता है। ज्ञान के अलावा और किसी का कर्ता नहीं है। 'आत्मा परभावों को करता है'- यह व्यवहारी जनों का मोह है अर्थात् यह उनकी मिथ्या मान्यता है।

सन्धिः-

ज्ञानादन्यत्- ज्ञानात्+अन्यत् (जश्त्व सन्धि; झलां जशोऽन्ते)

कर्तात्मा- कर्ता+आत्मा (दीर्घ सन्धि; अकः सवर्णे दीर्घः)

मोहोऽयं- मोहः+अयम् (उत्व विसर्ग सन्धि; अतो रोरप्लुतादप्लुते)

समासः- परभावस्य- परस्य भावम् इति परभावम्, तस्य परभावस्य (षष्ठी तत्पुरुष)

छन्दः- अनुष्टुप् छन्द (अनुष्टुप् छन्द को ही श्लोक कहते हैं।)

विशेषः- इससे हमें आत्महित की प्रेरणा मिलती है। इसीसे संबंधित एक श्लोक भगवती आराधना की154वीं गाथा की विजयोदया टीका में; मूलाचार टीका-156 में; अनगार धर्मामृत, अध्याय-1, श्लोक-12 में और पंचाध्यायी उत्तरार्ध, गाथा-804 में भी आया है।

स्व-पर भेदविज्ञान से स्वभाव का ग्रहण

- अरविन्द जैन, खंडेरी (शास्त्री द्वितीय वर्ष)

(सवैया इकतीसा)

जैसे कोऊ जन गयौ धोबी के सदन तिन,
पहियों परायौ-वस्त्र मेरौ मानि रह्यौ है।
धनी देखि कह्यो भैया! यह तो हमारौ वस्त्र,
चीन्हैं पहिचानत ही त्यागभाव लह्यौ है।।
तैसे ही अनादि पुद्गलसौं संजोगी जीव,
संग के ममत्व सौं विभाव तामैं बह्यौ है।
भेदज्ञान भयौ जब आपा-पर जान्यौ तब,
न्यारौ परभाव से स्वभाव निज गह्यौ है।।

सन्दर्भः- प्रस्तुत छन्द पण्डित बनारसीदासजी द्वारा विरचित 'नाटक समयसार' से लिया गया है। जो उन्होंने ग्रंथाधिराज समयसार की 34, 35वीं गाथा पर आचार्य अमृतचंद्र देव कृत आत्मख्याति टीका के भावानुवाद के रूप में लिखा है।

प्रसंगः- पण्डित बनारसीदासजी ने प्रस्तुत छन्द में धोबी के उदाहरण के माध्यम से आत्मा को परभावों से भिन्न बताया है तथा आत्मा चैतन्य स्वभाव वाला है - ऐसा निर्णय कराया है।

शब्दार्थः- सदन- घर, पहियों- कपड़ा पहना, परायो- दुसरे का चीन्हैं- पहिचानकर, संग- पुद्गल का संयोग, आपा-पर- भेदज्ञान, न्यारौ- भिन्न, गह्यो- मानना/प्राप्त करना।

अर्थः- जैसे कोई व्यक्ति धोबी के घर जाता है और वहाँ किसी दूसरे के कपड़े पहनकर ऐसा मानता है कि ये कपड़े तो मेरे हैं; परंतु जब उस कपड़े का असली मालिक यह कहता है कि भाई! ये कपड़े तो मेरे हैं। तब वह व्यक्ति उस कपड़े को ध्यान से देखता है और किसी विशिष्ट चिह्न के मध्यम से निर्णय करता है कि सच में ये कपड़े मेरे नहीं हैं; उसीप्रकार यह जीव अनादिकाल से पुद्गल का संयोग होने से उसके प्रति ममत्वभाव करके स्वभाव के विपरीत प्रवर्तन कर रहा है। जब उसे स्व-पर का भेदज्ञान हो जाता है, तब उसे सहज स्वयं से ही अपने स्वभाव का भान होता है और वह तुरंत ही अपने आप को परद्रव्यों से भिन्न जान लेता है।

अलंकारः- धोबी को अज्ञानी जीव की, वस्त्र को पर पुद्गल की और चिह्न को भेदज्ञान की उपमा दी गई है; अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

छन्दः- सवैया इकतीसा

विद्वानों का संघर्ष

गरीबी भी जिन्हें दरिद्र न बना पाई

- शाश्वत जैन, भोपाल(शास्त्री तृतीय वर्ष)

कविवर पंडित भागचन्दजी का जन्म मध्यप्रदेश राज्य के अशोकनगर जिले के ईसागढ़ नामक ग्राम में कार्तिक कृष्णा तीज, विक्रम संवत् 1877 (ई.1820) को हुआ था।

गरीबी आने पर भी भागचंदजी वाणी और हृदय से दीन-दरिद्र नहीं हुए। आखिर होते भी कैसे? वे तो ठहरे श्रेष्ठ दर्जे के स्वाभिमानी, जिन्होंने सहा तो खूब, परंतु कहा एक शब्द भी नहीं। सरस्वती की सेवा अचल भाव से करते रहे और लक्ष्मी का कोप भी सहते रहे। जब घर में कुछ भी नहीं बचा तो एक दिन अपनी पत्नी, 2 पुत्र एवं पुत्री के साथ रातों-रात चुपचाप आजीविका हेतु जयपुर की ओर रवाना हो गए। यातायात के साधन नहीं होने पर पैदल ही चल पड़े। मार्ग में 2 दिन भूखे भी रहे; परंतु यात्रा जारी रखी। बहुत लंबे व परिश्रम-पूर्ण सफर के बाद जयपुर पहुँचकर किसी एक धर्मशाला में ठहरे।

अगले दिन धर्मशाला से निकले तो इसलिए थे कि कोई काम-धंधा मिल जाए, एक रुपया या 4 - 8 आना मिल जाए तो दूध-रोटी की व्यवस्था हो जाए; परंतु धर्मशाला से निकलते ही आँखों से आँसू आ गए कि हम सुबह-सुबह जिनेन्द्र देव की पूजा छोड़कर कहाँ जा रहे। अब जो होगा सो देखा जाएगा। पहले श्री जी की पूजन करेंगे, फिर कुछ अन्य काम करेंगे- ऐसा विचार कर मंदिर की तरफ मुड़ गए और वहाँ पूजा का आनंद लिया। फिर स्वध्याय हुआ तो वहीं बैठ गए और गोम्मटसार संबंधी प्रश्नों के उत्तर श्रोता बनकर ही दिए।

प्रवचनोपरांत पंडितजी ने जिनवाणी स्तुति सुनाई - **'साँची तो गंगा यह...।'** सभी प्रसन्न हो गए और परिचय जानना चाहा कि ये तो भागचन्दजी का भजन है, आपको कैसे मिला? वे बोले हम उन्हीं के गाँव के हैं और चुपचाप सिर नीचे किए जाने लगे। तब समाज ने भोजन के लिए पूछा तो भागचंदजी बोल उठे – 'मैं समाज के आश्रित नहीं रहना चाहता। **भले ही आज मुझसे लक्ष्मी रूठी है; परन्तु माँ सरस्वती नहीं।** यदि सरस्वती को भी आजीविका का अंग बनाया तो माँ सरस्वती भी रूठ जाएगी और उसके बिना भागचंद जीएगा भी कैसे? **अभी दैव रूठा है पुरुषार्थ नहीं।'**

6 दिन बाद समाज के सहयोग से कपड़े का व्यवसाय किया। 5 वर्ष बाद 5000/- रुपये कमाए, 15/- रुपये प्रति महीने खर्च किए, 10/- रुपये प्रति महीने पूँजी बनाई। बचे हुए 3500/- रुपये व दुकान समाज को लौटा दी।

सच ही है न्याय-नीति व स्वाभिमान जिसके चित्त में हो वो चंद भाग का धारी कैसे हो सकता है?

शुरुआत एक रुपया से..!

-दिव्यांश जैन, अलवर (शास्त्री तृतीय वर्ष)

संघर्षों की राह में बढ़ते हुए बात ई.स. 1905 की है, जब क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी को न्याय शास्त्र पढ़ने की ललक जगी। तब वे बनारस के 'क्वींस कॉलेज' के प्रसिद्ध नैयायिक विद्वान के पास गए और वहाँ उनके चरणों में एक रुपया रखते हुए निवेदन किया कि 'आप मुझे न्याय शास्त्र का अध्ययन करावें'

तब उन नैयायिक विद्वान ने प्रश्न किया कि **'क्या तुम ब्राह्मण हो?'**

तो वर्णीजी ने सहज ही उत्तर दिया - **'न तो मैं ब्राह्मण हूँ और न ही मैं क्षत्रिय हूँ; मैं तो जैन अनुयायी वैश्य हूँ।'**

इतना सुनते ही वे नैयायिक विद्वान भड़क उठे। अध्यापन की बात तो दूर, वर्णीजी को नास्तिक तक कहने लगे और उनका अपमान कर वहाँ से वापिस भेज दिया।

वे बहुत दुःखी हुए; किन्तु इस तिरस्कार को पुरस्कार मानते हुए पुनः गुरु की खोज में निकल पड़े। अंततः एक श्वेतांबर विद्यालय में न्याय शास्त्र का अध्ययन किया; परंतु उनके अंतरंग में दिगम्बरत्व अपनी गहरी पैठ जमा चुका था। जिसके कारण उन्होंने यह निर्णय किया कि बनारस में ही दिगम्बर विद्यालय की स्थापना हो।

इस निमित्त उन्होंने उस ही एक रुपया, जिसे वे उन नैयायिक विद्वान के चरणों में भेंट करने वाले थे, उससे 64 पोस्टकार्ड खरीदे और समाज के 64 प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेजे।

इसप्रकार उनके अनेक प्रयासों के फलस्वरूप **ई.स. 1906 में बनारस में ही स्याद्वाद विद्यालय की स्थापना हुई।**

वर्णीजी उस स्याद्वाद विद्यालय के संस्थापक होने के साथ-साथ उसके प्रथम विद्यार्थी भी रहे।

1. मेरी जीवन गाथा, भाग-1, पाठ-23-27, पृ.83-101

धर्म साधना हेतु आहार चर्या

संदेश जैन, दिल्ली (शास्त्री द्वितीय वर्ष)

सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी द्वादश अंगों में विभक्त है। जिसके बारहवें अंग के चौदह पूर्वों में एक **'प्राणावाय पूर्व'** है। जिसमें काय चिकित्सा संबंधी विषय का विस्तृत वर्णन है। तात्पर्य यह है कि परम उपकारी जिनवाणी, हमारी माँ के समान है; मातृवत् ही यह लौकिक एवं पारलौकिक - दोनों ही रूपों से सर्वांगीण विकास व जीवन जीने एवं सफल करने की कला सिखाती है।

अभी हम सभी देह-युक्त प्राणी हैं, यदि हमें वर्तमान पर्याय में ही निर्विघ्न रूप से धर्म साधना करना है तो शरीर का पालन-पोषण करना एवं उसके आहार-विहार को अनुकूल रखना हमारा प्राथमिक कर्तव्य है।

प्रवचनसार में 'युक्ताहार' शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि वहाँ मुनिराज के योग्य युक्ताहार की बात की है; परंतु हमें अपनी भूमिका-अनुसार समझ लेना चाहिए अर्थात् हमारा आहार धर्म साधन में साधक, बने बाधक नहीं।

भारतीय परम्परा में पल्लवित सभी चिकित्सा शास्त्रों में आहार संबंधि प्रमुख नियम यह है कि भरपेट भोजन करना शरीर के लिए युक्त नहीं है, पेट से कम भोजन करना ही युक्ताहार है।

प्रवचनसार टीका में भी कहा है कि 'अप्रतिपूर्णोदर एवाहारो युक्ताहारः।'[1]

लोक में भी हम देखते हैं कि किन्हीं वस्तुओं को पीसना हो तो मिक्सी में थोड़ी जगह खाली छोड़ी जाती है। तभी वह सही से कार्य कर पाती है; ठसाठस भर देने पर वह खराब हो जाती है। वॉशिंग मशीन में भी यदि ठसाठस कपड़े भर दिए जाएँ, तो वह काम ही नहीं करती है।

इसीप्रकार से शरीर का जो पाचन तंत्र है, उसमें यदि ठसाठस भोजन भर दिया जाएगा, तो वह पचेगा ही नहीं; अपितु वह आत्महित और स्वाध्याय में बाधक आलस्य, अधिक निद्रा और कुछ समय बाद किसी बड़ी बीमारी का कारण बन जाएगा।

चिकित्सा शास्त्र का एक और महत्वपूर्ण नियम है कि भोजन दिन में एक या दो बार ही किया जाए; क्योंकि हमारे पेट में जो जठराग्नि होती है। जब तक वह तीव्र होती है, तब तक हमें भूख लगती है। वह एक अलार्म की तरह है, जो हमें संकेत करती है कि पूर्व में किया हुआ भोजन पच गया है तथा अब शरीर नये भोजन को पचाने के लिए तैयार है; परंतु जब हम पशुवत् बारंबार कुछ न कुछ खाकर उस जठराग्नि को बुझा लेते हैं। उसको सही से जलने का अवसर ही नहीं देतें हैं, तो वह बुझी हुई अग्नि भोजन को पचाने में समर्थ कैसे हो सकती है?

लगभग सारी ही बीमारियों का कारण यह ही है। मानों इसीलिए मुनिराज एक समय ही आहार ग्रहण करते हैं और वास्तव में तो एक स्वस्थ मानव शरीर के लिए यही युक्ताहार है।

असल में भूख दो तरह की होती है - एक पेट की भूख जो स्वाभाविक है और दूसरी है मन की भूख, जो बिना भूख के ही बारंबार कभी मीठा, कभी नमकीन, कभी खट्टा आदि माँगती है वह रसन इंद्रिय की लोलुपता और आसक्ति की परिचायक है। ध्यान रहे! बिना भूख के ग्रहण किया हुआ एक कौर भी जहर है।

शीत ऋतु चर्या: - 'बलिनः शीतसंरोधाद्-हेमन्ते प्रबलोऽनलः।'[2] अभी हेमंत ऋतु का समय है और इस समय शरीर के छिद्र शीत से अवरूद्ध हो जातें हैं; जिसके कारण जठराग्नि अत्यंत प्रबल रहती है। इस समय किया हुआ गरिष्ठ भोजन भी पच जाता है; इसलिए इस समय मेवा, मीठा, खट्टा पर्याप्त मात्रा में खाया जाना चाहिए।

इस समय शरीर में अंतरंग और बहिरंगपने से रूखापन रहता है, अंतरंग रूखापन मिटाने के लिए घी जैसे चिकनाहट भरे पदार्थों का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए और बहिरंग रूखापन मिटाने के लिए पूरे शरीर की मालिश बहुत आवश्यक है। ध्यान रहे! मालिश प्राकृतिक तेल से ही करें; जैसे सरसों, तिल आदि। रसायन युक्त बाजारू तेल या क्रीम प्रयोग में न लें; क्योंकि ये आगे चल कर बहुत घातक होते हैं।

इस समय शरीर को दम और बल को बढ़ाने वाले भारी व्यायाम और धूप का सेवन बहुत आवश्यक है। अधिक ताप वाली धूप का सेवन न करें एवं अधिक गर्म या ठंडे जल का सेवन न करें। जल का तापमान हमारे शरीर के तापमान के बराबर होना चाहिए। अधिक ठंडे-गर्म जल के तापमान को संतुलित करने के लिए शरीर की बहुत अधिक शक्ति व्यय हो जाती है।

अतः हमारा आहार-विहार आदि समस्त क्रियाएँ हमारे लक्ष्य और प्रयोजन में साधक बने, बाधक नहीं - ऐसी भावना...।

---

1. प्रवचनसार, तत्त्वप्रदीपिका टीका, गाथा-229

2. अष्टांग हृदय, सूत्रस्थान, अध्याय-3, सूत्र-7

नाटक कक्ष

क्या खोया क्या पाइया?

अर्पित जैन, स्यानियाँधाना (शास्त्री तृतीय वर्ष)

(प्रथम दृश्य)

(सोनू का अपनी दुकान से थका-हारा झुंझलाते हुए आना)

सोनू (अपने पिता से):- रोटियाँ बातें बनाने से नहीं मिलतीं। खून-पसीना एक करना पड़ता है, खैर आप क्या समझेंगे, जिन्होंने अपना सारा जीवन सुनने-सुनाने में ही गवाँ दिया, वो भला! मेहनत की कीमत क्या समझे?

पिता:- बेटा! शांत रहो, धैर्य रखो परिणाम क्यों बिगाड़ते हो; होगा तो वही जो केवली ने देखा है।

सोनू:- क्या केवली हमारा बुरा ही बुरा देखते हैं? 20 साल हो गए कहते-कहते। होगा तो वही जो केवली ने देखा है...

पिता:- उनके हाथ में भी कहाँ है बेटा! वे तो मात्र जानते हैं, कर तो वे भी नहीं सकते।

सोनू:- आपसे तो बात करना पत्थर पे सर मारने जैसा है।

(तभी पीछे से छोटू आता है)

छोटू:- जय जिनेंद्र सभी को और क्या चल रहा है?

सोनू:- कुछ नहीं! वही रोज की खिट-पिट; मेरी बात इन्हें समझ में नहीं आती, इनकी बात तो वैसे ही किसी को समझ नहीं आती!!!

सोनू:- तुम इनकी छोड़ो, तुम अपने हाल बताओ।

छोटू:- सब ठीक है भैया! मुझे आप दोनो से एक जरूरी बात करनी है।

सोनू:- बोलो!

छोटू:- भैया मेरे बोर्ड में 93% बने हैं, अब आगे क्या करना है?

सोनू:- (छोटू से) अरे! अब आगे क्या? तुम्हारे तो इतने अच्छे मार्क्स आए हैं, तुम्हारी इच्छा जो करना हो करो, पर तुम्हारे पास चार ऑप्शन हैं; C.A., इंजीनियर, डॉक्टर, I.A.S.

(पिता अत्यन्त मंद स्वर में बोले बेटा शास्त्री भी कर सकते हैं।)

सोनू:- (पिता से) (बहुत गुस्से-से) क्या इरादा है आपका? अपने साथ इसकी जिंदगी भी बर्बाद करना चाहते हो क्या?

पिता:- क्या कमी है हमारे पास? सब कुछ तो है; सुख है, शांति है और दो वक्त की रोटी मिल जाती है।

सोनू:- दो वक्त की रोटी तो जानवरों को भी मिल जाती है। समाज में इज्जत हो, चार लोग जाने तब तो कोई बात है।

(छोटू मन ही मन विचार करता है कि ये दोनों अपनी-अपनी जगह सही हैं, अब मुझे निर्णय करना है कि मुझे आगे क्या करना है?)

(द्वितीय दृश्य - इंद्र की सभा)

इन्द्र-चित्रगुप्त संवाद

न्यूज़ एंकर:- आज की ताजा खबर स्वर्ग लोक में जनसंख्या में हुई चौगुनी वृद्धि, नारकियों को नारकी न मिलने की वजह से हुआ सुख का अनुभव। वे महाभारत की जगह रक्षाबंधन मनाने पर उतर आए हैं। यदि इसी तरह से जनसंख्या में वृद्धि होती रही तो स्वर्ग लोक में अकाल की संभावना, जल्द ही अमृत के कुए नहीं खोदे गए तो सूखा पड़ने की पूरी-पूरी आशंका...। नमस्कार! मिलते हैं ब्रेक के बाद...

विश्वकर्मा:- भगवन्! अब हमारा क्या होगा अमृत के बिना? (विश्वकर्मा अपनी पत्नि को फोन करता है) अरे! भाग्यवान पड़ोसी को हमारे कुए से अमृत मत लेने देना, स्वर्ग लोक पर अकाल पड़ने वाला है। भाग्यवान कुओं की निगरानी के लिए 4 ऐरावत हाथी छोड़ दिये जाएँ।

कुबेर:- महाराज हमारे राज-कोश में जन-संख्या के बढ़ने से आवास व्यवस्था में 1 लाख करोड़ dollar की दर से कमी आई है, जो पिछले साल से चार गुना ज्यादा है, जल्द ही कुछ करना पड़ेगा।

इन्द्र:- 'Why are you so tense चित्रु give them some fans.' चित्रगुप्त! यम ब्रो को फोन लगाया जाए।

आप जिनसे संपर्क करना चाहते हैं, वे अभी पिकनिक में जलसा करने में व्यस्त हैं, कृपया दुबारा प्रयास न करें।

इन्द्र:- पता लगाया जाय स्वर्ग में population growth का कारण क्या है?

चित्रगुप्त:- My lord you don't believe me.

इन्द्र:- But what!

चित्रगुप्त:- ये सभी एक ही जगह से आ रहे हैं, जयपुर...।

इन्द्र:- How this is possible? हमने visa तो पूरे World को दिया था। Don't worry, all सभासदों! just chill, हम मनुष्य के स्वभाव को जानते हैं; लालच, स्वार्थ, ऐश्वर्य, मान ने उसे इसतरह जकड़ रखा है, जिसके कारण उसकी आत्मा कहाँ मर रही है, उसे भान ही नहीं।

इन्द्र:- चित्रगुप्त! हमारे कुशल गुप्तचरों को मनुष्य-लोक में भेजा जाए और जन-संख्या वृद्धि का कारण पता लगाया जाए।

(तृतीय दृश्य)

संचालक:- भवितव्य का योग ऐसा बना कि छोटू भी पिता से सहमत होकर बड़े-भाई का विरोध कर शास्त्री करने श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महविद्यालय में चला गया।

पाँच साल बाद...

(छोटू रास्ते से गुजरता हुआ तभी)

छोटू :- (वृद्ध से) जय जिनेन्द्र दादा जी...

समाज का एक वृद्ध:- बेटे! तुम्हारी शास्त्री तो हो गयी, अब आगे क्या विचार है?

छोटू:- जैन दर्शन में पठन-पाठन, शोध आदि का कार्य करना है।

समाज का एक वृद्ध:- वो सब तो ठीक है, पर तुम्हें अपनी आजिविका, अपने परिवार के बारे में भी तो सोचना होगा।

छोटू:- परिवार वालो का क्या? वो तो अपनी स्वयं की व्यवस्था लेकर आए हैं।

दूसरा वृद्ध:- देखो पंडित जी! बुरी मत मानियो, जे सब तो शास्त्रन की बातें आएँ, असल में तो जॉन के पास पैसा, वोई करे हईसा।

छोटू:- आप बड़े हैं, इसलिए ज्यादा कुछ तो नहीं, पर जैन शास्त्रों की बाते ठीक भी है और सही भी और मुझे उन पर पूरा विश्वास है।

(छोटू एकांत में जाकर विचारता है...)

मुझे यह नहीं पता है कि मुझे उन पर क्यों क्रोध आया; क्या यह मेरे अहंकार पर चोट थी? या फिर तत्त्वज्ञान की अप्रभावना सुनकर ऐसा हुआ?)

जगत प्रसिद्ध संपदा हो, या सिंहसान का ताज।
दो रोटी हो भूख मिटाने , हो पीने को छाछ ।।

(दोस्त और छोटू का संवाद)

दोस्त:- हाँ! भाई छोटू कैसी कट रही है, जॉब-वोब तो है न, कभी-कभी तो मुझे तुमपे दया आती है।

ना होटल में खाना , ना सिनेमा जाना।
ना लड़की घुमाना, बस बाते बगराना।।

क्या यार! पता नहीं वो कौन-सी मनहूस घड़ी थी, जब तुमसे दोस्ती करी, तुम्हारे कारण मेरी भी जिंदगी नीरस हो गई।

छोटू:- दया! दया तुम्हें मुझ पर नहीं, मुझे तुम पर आनी चाहिए। तुम्हारी सोच पे आनी चाहिये, तुम्हें तो अभी दोस्ती की पहचान ही नहीं है।

(छोटू एकांत में विचार करता है...)

क्या मैं कहीं अपने आप से भाग तो नहीं रहा? आज ऐसा क्या हुआ? क्या हुआ की मुझे अपने गुरु की बातें गलत-सी लगने लगी। आज क्यों मुझे guilt feel हो रहा? इतनी ग्लानि महसूस हो रही, जैसे मैंने कोई अपराध किया हो। ऐसा आखिर! क्या हुआ की आज मैं दया का पात्र बन गया? क्यों मुझे भी शास्त्रों की बातें खोखली प्रतीत हुई....?

(पापा की गोद में सिर रखकर)

पिता:- क्या हुआ बेटा! आज इस बूढ़े की याद कैसे आ गई? (खाँसता हुआ।)

छोटू:- पता नहीं! आज बहुत अकेला महसूस कर रहा हूँ। ऐसा लग रहा है, मानो कुछ तो गलत हो रहा है।

पता नहीं दुनिया आखिर चाहती क्या है?

पिता:- देखो बेटा! दुनिया तो गोल है, उसका न कोई मोल है, मतलब बेटा! यहाँ तो जो दिखेगा वो ही बिकेगा, लोक में तो ऐसा ही उसूल है कि सच को झूठ, झूठ को सच कहा जाता है।

बेटा! अब तुम पर निर्भर करता है कि तुम्हें दुनिया को खुश रखना है कि खुद को खुश करना है...।

बेटा:- पिता जी! आज न जाने, क्यों मैं निराशा और बोझ के तले बहुत घुटन महसूस कर रहा हूँ मानो जैसे आसमान आज मुझसे चीख-चीख कर पूछ रहा हो कि मेरा अस्तित्व क्या है? मेरी जीवन की सार्थकता क्या है? आज मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि मुझे स्मारक भेजने का निर्णय, क्या परिस्थिति जन्य था या आपके धैर्य व संतोष का परिणाम...?

पिता:- बेटा! तुम ऐसा मत समझना कि मैं तुम्हें इंजीनियर, C.A., डॉक्टर या प्रशानिक सेवक बनाने में समर्थ नहीं था; परंतु मैं जानता था कि यह भौतिकवाद तुम्हारी आंतरिक शांति को हर लेता, तुम्हें अंधा बना देता।

बेटा! आज तुमने जो समाज वालों को, अपने दोस्तों को उत्तर दिये, वो तुमसे कहलवाया नहीं जा रहा था। वो तुम्हारे अंतरंग की आवाज थी। तुम्हारे तत्त्वज्ञान का ही बल था।

(इंद्र सभा का दृश्य)

इंद्र:- (चित्रगुप्त से) देखा चित्रगुप्त! ये कोई समस्या ही नहीं थी, यही तो स्वर्गलोक में आने का एकमात्र उपाय है। यदि ये लोग स्वर्ग में नहीं आयेंगे तो क्या सप्त-व्यसनी आयेंगे?

चित्रगुप्त:- महाराज! इतना ही नहीं, ये लोग स्वर्ग भी आयेंगे और मोक्ष भी जायेंगे।

संचालक:- इस लघु-नाटिका में यह दिखाना हमारा उद्देश्य नहीं है कि एक शास्त्री विद्वान आगे कार्यक्षेत्र में क्या कर सकता है या क्या नहीं कर सकता? इस लघु नाटिका के माध्यम से हम यह दिखाना चाहते हैं कि उतार-चढ़ाव तो मानव जीवन का प्राथमिक अंग है; परन्तु तत्वज्ञान का बल उसे निराशा से नहीं घिरने देगा। उसके चहरे पर शल्य की रेखा नहीं खींचने देगा। इसी का परिणाम है कि छोटू सब कुछ खोकर भी कुछ नहीं खोएगा।

इस लघु-नाटिका में पिता का धैर्य और आत्मसंतोष हम सभी के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय है।

मूल-आगम कक्ष

मुनिराज निद्रा को कैसे जीतते हैं?

प्रस्तोता:- पारस जैन, भिण्ड (शास्त्री तृतीय वर्ष)

(भगवती आराधना, विजयोदया टीका, गाथा-1434-1443, निद्रा विजयी प्रकरण, (आचार्य क्षपक को कर्मोदय के वश से होने वाली निद्रा को दूर करने का उपाय बताते हैं।)

समाधि के इच्छुक क्षपक को सदा ही निद्रा पर विजय प्राप्त करनी चाहिए; क्योंकि यह निद्रा महान अपकार को करने वाली है।

शंका:- परन्तु इस निद्रा से भला ऐसा क्या अपकार होता है?

समाधान:- निद्रा मनुष्य को अचेतन करती है।

शंका:- चेतन मनुष्य की चैतन्य रहित अवस्था तो होती नहीं, फिर आप कैसे कहते हैं कि निद्रा अचेतन करती है?

समाधान:- यहाँ विवेक-ज्ञान से रहित होना ही अचेतन शब्द से कहा गया है; क्योंकि गहरी नींद में सोया हुआ क्षपक योग्य-अयोग्य के विवेक-ज्ञान से रहित होता है; अतः वह हिंसा, मैथुन, परिग्रह आदि सर्व दोषों में प्रवृत्ति करता है।

शंका:- हे आचार्य! निद्रा कर्मोदय के वश से होती है, उसे मैं कैसे दूर करूँ?

समाधान:- यदि तुम्हें निद्रा सताती है तो स्वाध्याय करो और सूक्ष्म अर्थों का चिंतवन करो अथवा संवेग[1] और निर्वेद[2] को करनेवाली कथा सुनो।

प्रीति, भय अथवा शोक होने पर मनुष्यों को निद्रा नहीं आती; अतः तुम निद्रा को जीतने के लिए प्रीति आदि का सेवन करो।

यहाँ क्षपक प्रश्न करते हैं कि प्रीति, भय और शोक तो अशुभ परिणामरूप होने से कर्मों के आस्रव में निमित्त होते हैं; अतः उनमें और निद्रा में कोई अंतर नहीं है?

इसके उत्तर स्वरूप आचार्य संवर के कारणभूत प्रीति आदि के प्रतिनियत विषय को दिखाते हैं।

निद्रा को जीतने के लिए पंच-परावर्तन स्वरूप संसार से भय करो, रत्नत्रय की आराधना में प्रीति करो और पूर्व में किए दुराचरण के लिए शोक करो।

नरकादि गतियों में बार-बार आने-जाने से मैंने शारीरिक, मानसिक, आगंतुक और स्वाभाविक दुःखों का अनेक प्रकार से अनुभव किया है। वही दुःख आगे भी भोगने में आवेंगे - ऐसा मन में विचार करो।

1. संसार से भय, धर्म और धर्म फल में उत्साह होना संवेग है।

स्वर्ग व मोक्ष के सुखों को प्राप्त करने के लिए, असार शरीर का भार उतारने के लिए और कर्मरूपी विष-वृक्ष को उखाड़ने के लिए जो समर्थ है तथा मैंने जिसे पहले अनंत भवों में कभी प्राप्त नहीं किया है - ऐसा यह रत्नत्रय है। उसकी आराधना करने के लिए आज मैं उद्यत हुआ हूँ - इस प्रकार प्रीति की भावना करो।

जो नाना प्रकार के कर्म-संचय के मूल हैं और चार प्रकार के बंध[3] में निमित्त हैं - ऐसे हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह में, मिथ्यात्व, कषाय और विषयों में तथा अशुभ मन-वचन-कायरूप योग में ही मैं अभागा निरंतर लगा रहा।

मेरी बुद्धि हित-अहित का विचार करने में अत्यंत मूढ़ हुई, इसीलिए गुरुओं द्वारा कहे गए तत्त्वार्थ को न जान सका अथवा जान लेने पर भी श्रद्धा न करने से और चारित्र मोह के उदय से सन्मार्ग में प्रवृत्ति न कर सका; अतः मैं दुःख के समुद्र में डूबा हूँ।

निद्रा को दूर करने के लिए इसप्रकार के चिंतन में सदा लगे रहो। ध्यान के बिना तुम्हें एक क्षण भी नहीं गँवाना चाहिए।

जिसप्रकार घर में यदि सर्प घुसा हो तो उसे निकाले बिना सोना शक्य नहीं है। उसीप्रकार जो संसाररूपी महावन से निकलना चाहता है, वह दोषों को दूर किए बिना सोने में समर्थ नहीं होता।

जिसप्रकार अग्नि से प्रज्वलित गृह में कोई भी समझदार व्यक्ति सोना नहीं चाहेगा, उसीप्रकार संसार में राग-द्वेषरूपी अग्नि से जलते रहने पर भी कौन ज्ञानी निर्भय होकर सोना चाहेगा?

जिसप्रकार बहुत से शस्त्रधारी शत्रुओं के मध्य में कोई निर्भय होकर नहीं सो सकता, उसीप्रकार संसार को बढ़ाने वाले रागादि दोषों के उपशांत हुए बिना कौन निर्भय होकर सो सकता है?

निद्रारूपी अंधकार के समान मनुष्यों को कोई दूसरा अंधकार नहीं है - ऐसा जानकर हे क्षपक! तुम ध्यान में विघ्न करने वाली निद्रा को जीतो।

यदि निद्रा को नहीं जीत सकते हो तो आगम में निद्रा त्यागने का जो समय रात्रि का तीसरा पहर कहा है, उस समय निद्रा त्यागो अथवा उपवास से थके हुए आपकी समाधि जिस प्रकार हो उस प्रकार से निद्रा का त्याग करो।

2. संसार, शरीर और भोगों से सम्यक् प्रकार से उदासीनता होना निर्वेग है।
3. प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग।

अध्यापक कक्ष

सा विद्या या विमुक्तये

- पण्डित जिनकुमार शास्त्री
उपाचार्य
श्री दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर

'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या वह है, जो बंधनों से मुक्त करा दे। तनाव पैदा करना शिक्षा का उद्देश्य कदापि नहीं होना चाहिए। आज वर्तमान समय में शिक्षण-प्रक्रिया बहु-उद्देशीय हो गयी है; इसीलिए पर्याप्त मात्रा में शिक्षण-संसाधनों के होने पर भी उसके समीचीन फल का प्रायः अभाव ही है। उद्देश्य-विहीन प्रक्रिया असफल होती ही है, वहीं बहु-उद्देशीय प्रक्रिया भी सफलता के शिखर तक नहीं पहुँचा पाती है।

खेद की बात है कि आज शिक्षण-प्रक्रिया का उद्देश्य ज्ञान-प्राप्ति से हटकर आजीविका मात्र रह गया है, शायद यही कारण है कि आज के शैक्षिक लोग भी मानवीय मूल्यों को खोते जा रहे हैं।

उक्त बातें तो लौकिक शिक्षा के क्षेत्र में भी कही जा सकती हैं; परंतु जब बात धार्मिक-शिक्षण की आती है तो यहाँ ये बातें और अधिक विचारणीय हो जाती हैं।

यद्यपि शिक्षण एक त्रिमुखी प्रक्रिया है। जिसमें शिक्षक-विषय-छात्र के समान योगदान की अपेक्षा रहती है, वहीं शिक्षक पर मनोवैज्ञानिक रूप से अधिक जिम्मेदारी रहती है; क्योंकि शिक्षक ही वह माध्यम है जो कम संसाधनों से भी विषय के मर्म को छात्रों तक पहुँचा सकता है; उदाहरण के तौर पर देखते हैं तो हमारे नग्न दिगम्बर मुनिराजों ने बिना किसी संसाधनों के तीर्थंकरों की वाणी को हम तक सही मायने में पहुँचाया है।

आज अगर हम भी 'अगली पीढ़ी तक सच्चा तत्त्वज्ञान पहुँचें' इस पवित्र उद्देश्य से शिक्षण कार्य को समर्पण एवं लगन के साथ करेंगे, तो विद्यार्थी भी मन लगाकर सुनेंगे तथा विषय तो आचार्यों ने दिया ही है, इसीलिए उसमें नवीन कुछ मेहनत नहीं करना है।

बस आनंद के साथ वीतरागी मार्ग का प्रतिपादन छात्रों के समक्ष करना है और उन्हें विश्वास दिलाना है कि यह मार्ग बहुत आनंददायक है, बिना किसी अपेक्षा के जीवन लगाने लायक है। इससे शिक्षा भी सार्थक होगी और शिक्षण-प्रक्रिया भी व्यवस्थित चलती रहेगी।

सर्वज्ञ शासन जयवंत वर्तो।

निर्णय लेने की शक्ति

- पण्डित गौरव शास्त्री
वरिष्ठ अधीक्षक
श्री दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर

ज्ञान के समान इस जगत में और कोई सुख का कारण नहीं है। इस जगत में एकमात्र ज्ञान ही है, जो सर्वसमाधानकारक है। जिसके पास यह ज्ञान होता है, वह ज्ञानी कहलाता है और जिसके पास नहीं होता है, वह अज्ञानी कहलाता है; परंतु इस ज्ञान और अज्ञान का निर्णय करें कैसे? तथा ज्ञान और अज्ञान की मर्यादा, लक्षण आदि क्या हो सकता है? यह एक शंका बनी रहती है।

इसके समाधान के रूप में आचार्य माणिक्यनन्दी परीक्षामुख ग्रंथ के प्रथम अध्याय के द्वितीय सूत्र करते हैं कि **'हिताहितापाप्तिपरिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानं एव तत्।'** अर्थात् हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने में जो समर्थ है, वह प्रमाण है और वह प्रमाण ज्ञान ही हो सकता है, अन्य नहीं।

उक्त सूत्र में ज्ञान को स्पष्ट कर दिया है तथा उसी का अन्यथा अर्थ करने पर अज्ञान भी स्पष्ट हो जाएगा। खुलासा इस प्रकार है - सुख और सुख के साधन को हित कहते हैं और दुःख और दुःख के साधन को अहित कहते हैं। जो सुख व सुख के साधन की प्राप्ति का निर्णय करावे और दुःख व दुःख के साधन के त्याग का निर्णय करावे - ऐसे विवेक को ज्ञान कहते हैं तथा जो सुख व सुख के साधन का त्याग का निर्णय करावे और दुःख व दुःख के साधन की प्राप्ति का निर्णय करावे ऐसे विवेक अज्ञान कहते हैं।

न्याय की भाषा में दोनों को क्रमशः प्रमाण और प्रमाणाभास कहते हैं।

हित का अर्थ प्रयोजनभूत, योग्य, आवश्यक और अहित का अर्थ अप्रयोजनभूत, अयोग्य, अनावश्यक करते हैं, तो जो प्रयोजनभूत, योग्य, आवश्यक और अप्रयोजनभूत, अयोग्य, अनावश्यक का निर्णय करावे, वह ज्ञान है तथा जो इनका निर्णय नहीं करावे, वह अज्ञान है।

इस ज्ञान को ही विवेक, बुद्धि, मति, व्यावहारिक बुद्धि (Common sence) कहते हैं।

अब हम अपने ज्ञान को ज्ञान संज्ञा दे सकते हैं या नहीं? इसका विचार कर लेना चाहिए। हमें अपने भले-बुरे की पहचान करना आना चाहिए। इसे ही **निर्णय लेने की शक्ति** कहते हैं।

चित्रकला कक्ष

समय-एव आत्मा

हर्षित सिंघई, जबलपुर (शास्त्री प्रथम वर्ष)

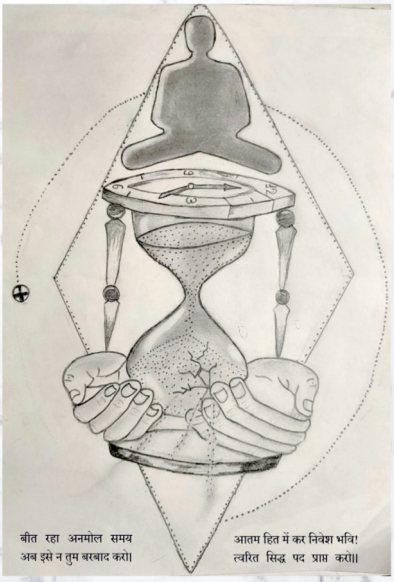

अलंकार आर्ट

सर्वज्ञ जैन, गुलाबगंजी (शास्त्री द्वितीय वर्ष)

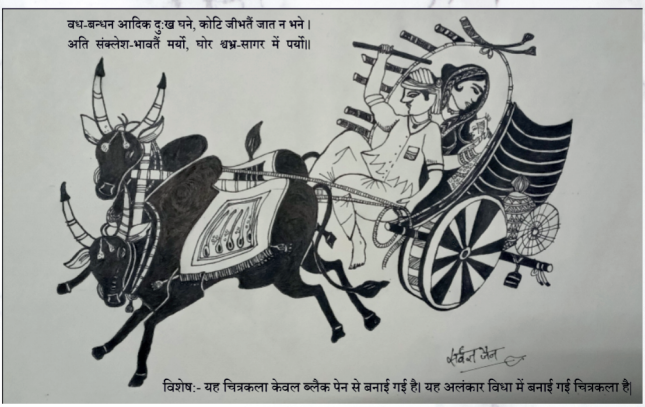

तिर्यंच गति के दुःख

विद्वान् कक्ष

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो

डॉ. अरुणकुमार जैन, बण्ड

एक था ग्वाला। नाम था कौण्डेश। गाँव में पला, गरीबी ने पढ़ने नहीं दिया, अनपढ़ रहा। पेट की आग बुझाने के लिए सेठ की गायें चराने का काम करने लगा। प्रतिदिन उसकी यही दिनचर्या थी कि सुबह गायों को चराने के लिए जंगल में ले जाना और गायें चराकर शाम को घर लौटना।

जिनवाणी बताती है कि पुण्य-पाप के उदय परिस्थितियाँ नहीं देखते हैं। कौण्डेश के पुण्य का उदय ऐसा आया कि सामान्य मनुष्यों को दुर्लभ ऐसे सिद्धसम निरागस, अहेतुक करुणावन्त मुनिवर के दर्शनलाभ उसे होते थे और अक्सर उसे मुनिराजों के अमृततुल्य वचनों का लाभ होता था।

एक दिन वह बीमार पड़ा। सेठ ने उपचार किया, वह बाह्य उपचार था, अंतरंग असली उपचार उसके पास मुनिराजों के वचन थे। उसी का श्रद्धान करते हुए उसने शांत भावों से शरीर छोड़ा। कौण्डेश के सेठ की सन्तान नहीं थी। कौण्डेश जीव सेठ की पत्नी से पुत्र के रूप में जन्मा। सेठ ने उसके आने का उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया, नाम रखा पद्मनंदी। पद्मनंदी बचपन से ही संस्कार-सम्पन्न, ज्ञान और वैराग्य से परिपूर्ण था। उसका बचपन हँसी-खुशी कब बीता, पता ही नहीं चला। वह ग्यारह वर्ष का हुआ। एक दिन पद्मनंदी मित्रों के साथ बगीचे में खेल रहा था। बगीचे के बाहर एक शिला पर जिनचन्द्र नाम के मुनि ध्यानस्थ विराजमान थे। भव्य जीव नर-नारी दर्शन के लिए आये थे, आ रहे थे। भक्तों का झुण्ड देखकर पद्मनंदी के मन में कुतुहल जागा, उधर उसकी काललब्धी जागी वह भी झुण्ड का हिस्सा बना। मुनिराज के अमृतवचन सभी भक्तों ने सुने थे; परंतु पद्मनंदी पर उनके वचनों का असर इतना ज्यादा हुआ कि उसका मन संसार से उदास हुआ। शांतला माँ और पिता धार्मिक थे; इसलिए दीक्षा के लिए अनुमति भी मिल गई। पद्मनंदी ने जिनचंद्र मुनि से मुनिदीक्षा ली और मुनि बने।

उनके जीवन के ध्यान और अध्ययन - ये दो ही कार्य थे। अध्ययन करते समय एक दिन किसी गूढ़ तत्त्व के विषय में शंकित हो गये। समाधान नहीं होने पर उन्हें विकल्प हुआ कि आज सीमंधर तीर्थंकर विदेहक्षेत्र की बजाय भरतक्षेत्र में होते तो उनकी शंका का समाधान हो जाता; परंतु उनका होना कर्माधीन था; परंतु नमस्कार तो कर सकते हैं; सो उन्होंने सीमंधर स्वामी को नमस्कार किया। सीमंधर स्वामी ने धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया। आशीर्वचनों को सुनकर धर्मसभा (समवशरण) के जीवों को आश्चर्य हुआ। वहाँ उपस्थित प्रधान श्रोता ने पूछ ही लिया - भगवन्! यह आशीर्वाद किसको दिया जा रहा है?

भगवान की वाणी में उत्तर आया कि यह आशीर्वाद भरतक्षेत्र के प्रातःस्मरणीय समर्थ मुनि पद्मनंदी को दिया है।

धर्मसभा में दो मनि ऐसे थे, जो पूर्वजन्मों में पद्मनंदी के साथ थे, उन्हें चारण ऋद्धि प्राप्त थी। इधर तपोबल से पद्मनंदी को भी चारण ऋद्धि प्रकट हो गई। विदेहक्षेत्र से वे दो मुनि पद्मनंदी के पास आये। उन्होंने धर्मसभा में घटी आशीर्वाद की घटना पद्मनंदी को सुनाई।

उनके साथ पद्मनंदी विदेहक्षेत्र गये। आठ दिन सीमंधर परमात्मा के पास रहे। वहाँ दिन तो भरतक्षेत्र में रात, भरत क्षेत्र में दिन तब वहाँ रात; इसलिए निराहार रहे। वैसे भी समवशरण में भूख-प्यास व आदि बाधायें नष्ट हो जाती है। वहाँ घटी एक घटना से उनका नाम एलाचार्य प्रसिद्ध हुआ; क्योंकि विदेह क्षेत्र के नर-नारियों के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष की होती है। पद्मनंदी साढ़े तीन हाथ के।

विचार करो कि एक धनुष चार हाथ का होता है, उनका शरीर तो एक धनुष से भी कम था, सो वे उस धर्मसभा में अन्य मनुष्यों की तुलना में एला (इलायची) जैसे लगे थे; अतः वहाँ वे मूल नाम की बजाय एलाचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुये। इस विदेहक्षेत्र की यात्रा में उनकी पींछी सीमंधर भगवान के प्रति भक्त के भावावेश के कारण मार्ग में कहीं गिर गई थी, उन्हें गृद्धपंखों की पींछी प्राप्त कर उससे नित्यकर्म पूर्ण किए थे, इस कारण वे गृद्धपिच्छाचार्य के नाम से भी जाने गए। विदेहक्षेत्र में सीमंधर स्वामी के सानिध्य से उनके ज्ञान में इतना निखार आया, परिणामों में इतनी विशुद्धि बढ़ी कि यहाँ आकर उन्होंने प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड तथा शिष्य के निवेदन पर पञ्चास्तिकाय आदि अनेक स्वतंत्र ग्रंथ लिखे।

षट्खण्डागम के पहले तीन खण्डों पर बारह हजार श्लोक प्रमाण 'परिकर्म' नाम की टीका भी लिखी थी। जो आज उपलब्ध नहीं है। इतना समय उनका लिखने में गया कि लिखते-लिखते उनकी गर्दन टेढ़ी हो गई थी; इसलिए वे वक्रग्रीवाचार्य नाम से भी ख्यातिप्राप्त हुए।

उनके अपरिमित ज्ञान को जानकर पञ्चास्तिकाय ग्रंथ के टीकाकार श्रुतसागर सूरि ने उन्हें 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा है। (दक्षिण भारत के एक गाँव कौण्डकुन्दपुर निवासी होने से कौण्डकुन्दाचार्य नाम से प्रसिद्ध हुए। वे इस नाम से इतने प्रसिद्ध हुए कि आज हम उन्हें मुख-सुख भाषायी नियम से कुन्दकुन्द नाम से जानते हैं।

मुनिजीवन के तैंतीस वर्ष तथा जन्म के चवालीस वर्ष पूर्ण होने पर मार्गशीर्ष माह की कृष्णपक्ष की अष्टमी (गुरुवार) के दिन उन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ था। ईसा पूर्व बारह वर्ष में पिच्यानवें (95) वर्ष, दस(10) माह, पंद्रह (15) दिन की इस जन्म की आयु पूर्ण कर समाधिपूर्वक देह त्यागकर वर्तमान में स्वर्ग में देव के वैक्रियिक शरीर में विराजमान हैं। शीघ्र ही सिद्ध पद को प्राप्त होंगे। वृन्दावन कवि के शब्दों में कहे तो कुन्दकुन्द के बारे में 'हुए हैं न होहिंगे मुनीन्द कुन्दकुन्द से' इन सुप्रसिध्द श्लोक के साथ भावना भाते हैं कि-

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्॥

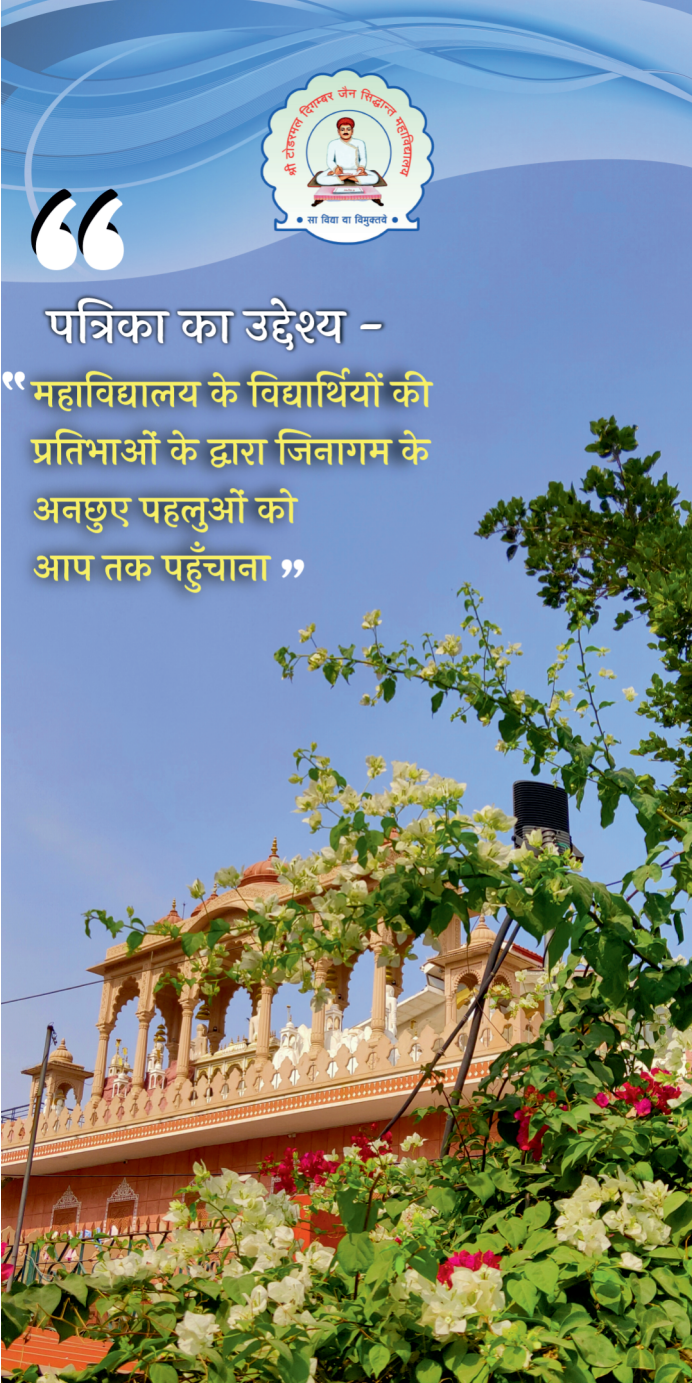

पत्रिका का उद्देश्य –

"महाविद्यालय के विद्यार्थियों की प्रतिभाओं के द्वारा जिनागम के अनछुए पहलुओं को आप तक पहुँचाना"